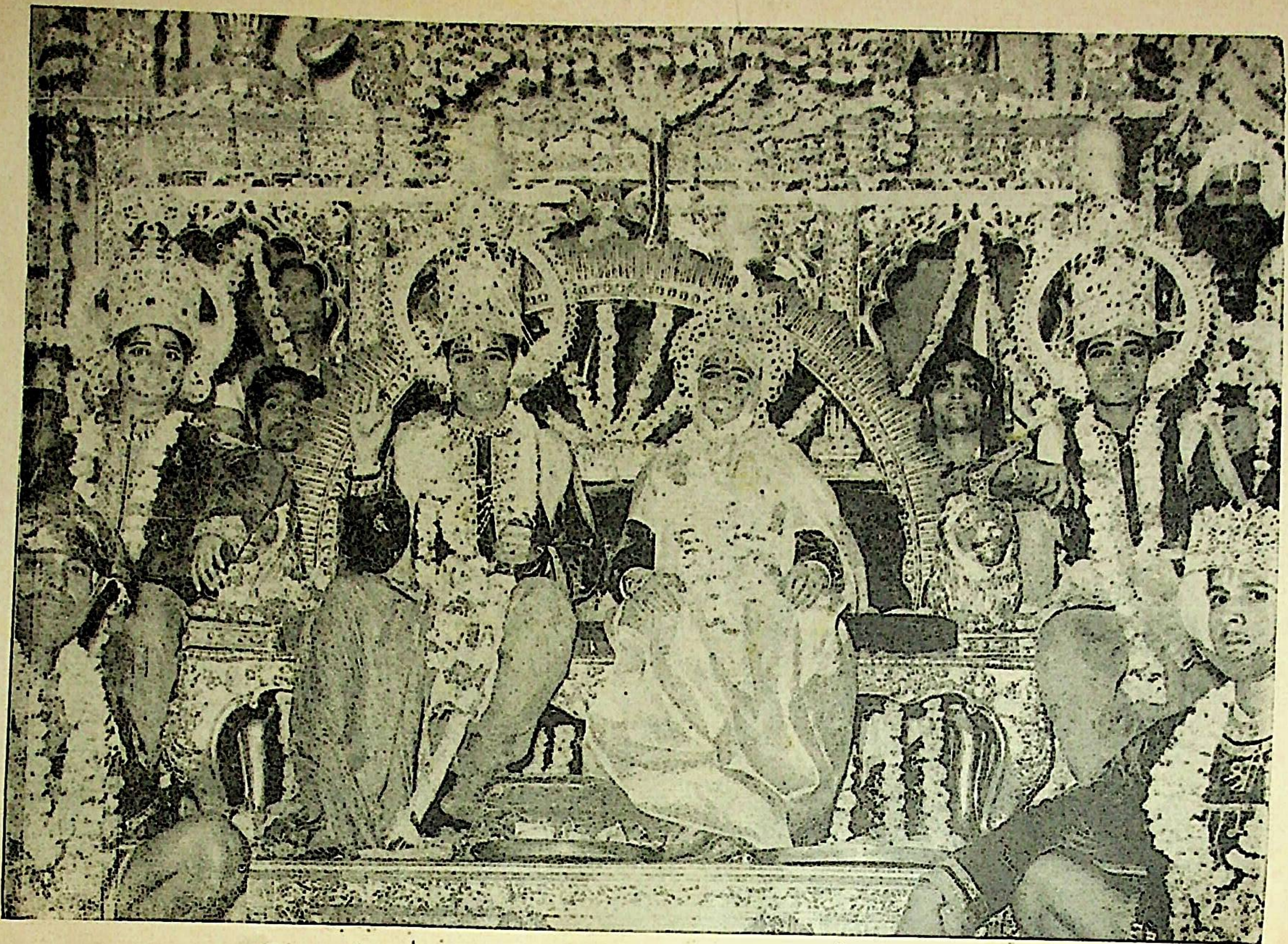
श्रीकृष्ण-सन्देश



श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा



श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रंगमंचपर प्रदर्शित रामलीलामें राज्याभिषेककी झांकी



श्रीकृष्ण-सन्देश

[श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघका मासिक मुखपत्र]







प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८



मूल्य

एक अङ्कका पचास पैसे

वार्षिक सदस्य शुल्क

सात रुपया

आजीवन शुल्क

एकसौ इक्यावन रुपया

वर्ष : ३] नवम्बर १९६७ [अङ्क : ४

विषय-सूची

मुद्रक : बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान

लोकके आलोकमें

स्वर्गीय सेठ श्रीजुगलकिशोरबिरलाने वास्तवमें एक सन्तके रूपमें जन्म लिया था। श्रीकृष्णजन्मस्थान जैसे पवित्र और ऐतिहासिक स्थानों और मन्दिरोंके नव निर्माण और पुनरुद्धारमें मुक्तहस्त-दानके लिए सारे देशके निवासियोंको उन्हें धन्यवाद देना चाहिये। मेरा निश्चित मत है कि श्री बिरलाजीने भारतकी आध्यात्मिक उन्नति और संरक्षणके हेतु एक सन्तके रूपमें जन्म लिया था। ईश्वरसे प्रार्थना है कि उनकी आत्मा शांति प्राप्त करे।

श्रीजयदयालजी डालमिया यथार्थतः अद्भुत कार्यक्षम, मधुरभाषी और साधुपुरुष हैं। मैं उनसे मिलकर प्रसन्न हुई और यह सुनकर मुझे और भी आनन्द हुआ कि 'भागवत-भवन'के निर्माण कार्यमें उनका महान् योग है। श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर आनेवाले प्रत्येक दर्शनार्थी और यात्रियोंके लिए उनकी दीर्घायु और स्वास्थ्यकी कामना करनी चाहिए।

भगवत्प्रिया माँ एफ. तलयारखाँ

मद्रासराज्य (दक्षिण भारत)

भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थानके दर्शन कर आज अपनेको धन्य मान रहा हूँ। यह दर्शनीय है। यह भूमि पवित्र है। यहाँ जितना ठहरा जाय, उतनाही लाभप्रद है। इस भूमिके माध्यमसे देशका आध्यात्मिक विकास हो, ऐसी कामना है। यहाँ प्रतिवर्ष एक ऐसा आयोजन करना चाहिए, जिसमें देश-विदेशके विद्वान् इकट्ठे होकर भगवान् कृष्णके उपदेश, कार्य और शक्तिकी अच्छी व्याख्या कर सकें और उस सन्देशको दूर-दूर तक पहुँचायें।

श्रीकृष्ण जन्मस्थानका पुनरुद्धार आवश्यक है। यह इस देशकी प्रेरणा भूमि रहेगी और यहांसे हमारे देशको आध्यात्मिक शक्ति मिलेगी। इसलिए इसकी योजनामें जनता एवं सरकारको सहयोग देना चाहिए। आशा है शीघ्रही योजना-बद्ध कार्यक्रम पूर्ण होगा।

बाल्मीकि चौधरी

संसत्सदस्य, १८ जनपथ, नई दिल्ली

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानका दर्शन कर प्रसन्नता हुई। अपना अहोभाग्य मानता हूँ। मन्दिरका कार्य शीघ्रपूर्ण हो, यही कामना है।

वी. एस. पागे

अध्यक्ष, महाराष्ट्र विधान परिषद

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानपर आकर मनको बड़ी शान्ति मिली।

कृष्णगोपाल माहेश्वरी
शान्ति माहेश्वरी
सुषमा माहेश्वरी
३६ नेपियन सी रोड बम्बई—६

श्रीकृष्ण जन्मस्थानके सुधारका कार्य संसारमें बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। हिन्दू धर्मकी जागृतिमें इसका महान् योग रहेगा। यहाँके निर्माण कार्यको देखकर बहुत प्रसन्नता होती है।

गोविन्द हरी सिंहानियां
कमला टावर, कानपुर

इस स्थानको देखकर हर्ष और विषाद दोनों सामने आते हैं। विषाद इस बात का है कि औरङ्गजेबकी नग्न मूर्ति भगवान् के मन्दिरके सर पर खड़ी है। हर्ष इस बातका है कि भगवान् कृष्णके अनुयायी अभी जीवित हैं, सम्भवतः इस भारको उतारकर अपनेको कृतार्थ करें। भागवत भवनका निर्माण उज्ज्वल भविष्यका परिचायक है।

जोरावर वर्मा एम. ए. एल. एल. बी
उपमन्त्री—सहकारिता उ. प्र.

आज इस पावन जन्मभूमिका दर्शन किया। हिन्दू धर्मके प्रतीक भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थानका जो जीर्णोद्धार किया जा रहा है, वह सराहनीय है। इस निर्माणसे आनेवाली पीढ़ियोंको प्रेरणा मिलेगी और अपने धर्मके प्रति सम्मान बना रहेगा।

सियादुलारी
भूतपूर्व सदस्य विधान सभा उ. प्र.

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानको देखनेका आज सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्थानको सुन्दर बनानेका जो कार्य हो रहा है, वह सराहनीय है। व्यवस्थाभी सुचारु है। स्थानकी महानता तथा गौरव को देखते हुए प्रबन्धक व सहायक लोग जो कुछ भी कर रहे हैं, उसकी सराहना जितनीकी जाय थोड़ी है। यहाँ पर कार्यकर्ता-गण बहुत विनम्र और सहायक हैं।

बैनीराम चतुर्वेदी
डिप्टी केन कमिश्नर लखनऊ

श्रीकृष्णजन्मभूमिको देखकर प्राचीन कालकी वास्तविक एवं यथार्थताका ज्ञान होता है। इस दिशामें प्रयत्न सराहनीय है।

मोतीलाल भार्गव
सहायक उपशिक्षा निदेशक इलाहाबाद

इस महान् व पवित्र स्थान पर आकर अनायासही भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्मरण हो आता है और एक अपूर्व शांति मिलती है। जो सज्जन इस कार्यमें रत हैं, उनका जीवन धन्य है और उनका कार्य सराहनीय है।

दीनदयाल भार्गव
डिप्टी चीफ कण्ट्रोलर इम्पोर्ट एक्सपोर्ट भारत सरकार कानपुर

★ श्रीकृष्ण-सन्देश ★

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।

वर्ष ३] मथुरा, नवंबर १९६७ [अङ्क ४

• गोवर्द्धन-पूजा •

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः ।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ।।

—अनेक प्रकारके पकवान—खीर, हलवा, पूआ, पूरी आदिसे लेकर मूँगकी दाल तक बनाये जायँ। व्रजका सारा दूध एकत्र कर लिया जाय।

हूयन्तामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वा धेनुदक्षिणाः ।।

—वेद-वादी ब्राह्मणोंके द्वारा भलीभाँति हवन करवाया जाय तथा उन्हें अनेक प्रकारके अन्न, गौएँ और दक्षिणायें दी जायँ।

अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ।
यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ।।

—और भी, चाण्डाल, पतित तथा कुत्तों तकको यथायोग्य वस्तुएँ देकर गायको चारा दिया जाय और फिर गिरिराजको भोग लगाया जाय।

स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ।
प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ।।

—इसके बाद खूब प्रसाद खा-पीकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर, गहनोंसे सज लिया जाय और चन्दन लगाकर गौ, ब्राह्मण आदि तथा गिरिराज-गोवर्द्धनकी परिक्रमा की जाय।

[श्रीमद्भागवतसे]

"यह विश्व विद्वान्, शूरवीर, तथा धर्मनिष्ठ व्यक्तियोंसे भरा रहे। सभी लोग आत्म-रक्षामें समर्थ हों। हमारे नेता ज्ञानी, अजातशत्रु, तथा तेजस्वी हों। सभी व्यक्ति दानशील और विद्या-रसिक हों, असद् इच्छाओंका दमन करनेमें सक्षम हों। सर्वत्र धन-धान्य भर-पूर रहे, पशु-धन समृद्ध हो। सभी जन सुमति-युक्त हों।"

तेजोपासनाका पर्व

श्रीचितरंजन भट्टाचार्य

'हे प्रभो, आप तेजोमय हैं। मुझे अपना तेज प्रदान कीजिये।'

यह एक पवित्र वैदिक प्रार्थना है। इस प्रार्थनामें मानव-जीवन और जगत्का सार निहित है। मानव-जीवन—मानव शरीरके प्रत्येक चक्रकी धुरीका संचालन तेजसे ही होता है। तेज ही है, जो शरीरके अंग-प्रत्यंगोंमें आकर्षण बनता है; तेज ही है, जो इन्द्रियोंमें 'गति' और क्रियाशीलताका रूप धारण करता है, और तेज ही है, जो प्राणोंको प्राणवान् बनाता है। नेत्रोंके भीतर तेज न हो तो नेत्र केवल महुएके कोएके समान व्यर्थ ही सिद्ध होंगे। श्रवणोंमें श्रवण-शक्तिका अभाव हो तो उनका होना न होनेके ही सदृश होगा। इसी प्रकार यदि बुद्धिमें ग्राह्य और चिंतनकी शक्ति न हो तो फिर नाम ही क्यों उसका 'बुद्धि' पड़ेगा। यह सब 'तेज' का ही प्रभाव है—'तेज' का ही प्रसाद है। तेजसे ही नेत्र 'नेत्र' है, मन 'मन' है, प्राण 'प्राण' है और बुद्धि 'बुद्धि' है। एक वैदिक ऋषि ने तो 'जीवन' और 'आयु' को भी तेजकी ही संज्ञा प्रदानकी है। यजुर्वेदके पूज्यपाद ऋषिने 'तेज' का अभिनंदन कुछ और भी अधिक व्यापक और विस्तृत अर्थमें किया है :—

विश्वे ऽ अद्य मरुतो विश्वऊति—
विश्वेभवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वेनो देवा ऽ अवसा गमन्तु—
विश्वमस्तु द्रविणं वाजो ऽ अस्मे ॥

—यह विश्व विद्वान, शूरवीर, तथा धर्मनिष्ठ व्यक्तियोंसे भरा रहे। सभी लोग आत्म-रक्षामें समर्थ हों। हमारे नेता ज्ञानी, अजातशत्रु तथा तेजस्वी हों। सभी व्यक्ति

दानशील और विद्या-रसिक हों, असद् इच्छाओंका दमन करनेमें सक्षम हों। सर्वत्र धन-धान्य भरपूर रहे, पशु-वन समृद्ध हो। सभी जन सुमति-युक्त हों।

किन्तु क्या 'तेज' (शक्ति) के अभावमें ऋषिकी आकांक्षाओंकी पूर्ति हो सकती है ?

पंच तत्वोंमें क्षिति, पावक, जल, गगन और समीरकी गणनाकी जाती है। संपूर्ण सृष्टिका चक्र पंचतत्वोंकी ही धुरी पर डोल रहा है। पंचतत्वोंमें उनका अपना-अपना 'तेज' (शक्ति) ही तो है, जो उनकी सार्थकता और उपयोगिताको अखंडित बनाए हुए है।

प्रत्यक्ष जगत्में 'सूर्य' क्या है ? 'तेज' का ही एक विशाल पुंज ही तो है। 'सूर्य' वंदित है— सुपूजित है केवल अपने तेजके ही कारण। वैदिक युगसे लेकर आधुनिक कालतक सूर्यकी वंदनामें कितने ही ऋषियों, साधकों, भक्तों और भारतीपुत्रोंने अपने पवित्र स्वरोंके हार गुम्फित किए हैं। वेद मंत्रोंमें सर्वत्र 'सविता'की गुंजार सुनाई पड़ती है। पर यदि सूक्ष्म रूपमें अन्वेषण किया जाय तो स्पष्ट रूपसे यह देखनेको मिलेगा कि सूर्यकी उपासना और वंदनाका कारण मुख्य रूपसे सूर्यका वह 'तेज' ही है जिसके कारण सूर्य 'सूर्य' है, और जिसके कारण वह जीवन और जगत्के मंगलके स्रोतके रूपमें अभिहित किया जाता है।

सृष्टिके आदिकालसे ही भारतीय 'तेज' का मर्मज्ञ रहा है। यही कारण है कि वैदिक कालसे ही उसके स्वरोंमें—उसकी वाणीमें 'तेज' की प्रार्थना है। 'तेज' की अर्चनाके लिए उसने एक पवित्र पर्वकी रचना करके, 'तेज' के साथ अपना सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। 'तेज' के उस पवित्र पर्वके लिए उसने 'काल' का चयन भी बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ किया— 'कार्तिकका मास'। ज्योतिष-विज्ञानके अनुसार कार्तिकमासमें सूर्य तुला-राशिका होता है। तुला-राशिका सूर्य नीच भावका और प्रभावहीन माना जाता है। अमावस्याके दिन तो सूर्य और चन्द्र-दोनों ही तेजहीन हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि कार्तिक मासकी अमावस्याकी निशामें वह 'तेज' विलुप्त या हीन हो जाता है, जो हमारे जीवन और जगत्की धुरी है। इसी वेलामें, 'तेज' के जागरणके लिए, भारतीय घरोंमें अर्चनाके दीप जल उठते थे। चारों ओर दीप, नीचेसे लेकर ऊपर तक दीप ही दीप। अर्चनाकी सफलताके रूपमें अमाकी वह काली निशा भी खिलखिलाकर विहँस पड़ती थी। कोटि-कोटि कंठोंसे स्तवनके स्वर फूट पड़ते थे। स्तवनके स्वर ! हाँ उन महालक्ष्मी—महाशक्तिके स्तवनके स्वर, जिन्हें 'तेज' की प्रभूता कहा जाता है।' घर-घरसे, कंठ-कंठसे निकलती हुई वह पवित्र स्वरावली ही निम्नांकित सूत्रोंमें, स्वरित हो रही है—

हिरण्य वर्णं हरिणीं
सुवर्ण रजत स्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं
जातवेदो म आवह॥

—तप्त-स्वर्णकी आभायुक्ता, मन विमुग्धक रूपवाली, स्वर्ण तथा रजतके आभूषणोंसे सुशोभित अंगोंवाली श्रीलक्ष्मी, जिसका तेज सूर्यके सदृश है, पर प्रभाव हिमांशु किरणोंकी भाँति सुशीतल है, उस सुवर्णांगना, सर्व शुभ-लक्षणवती 'श्री' का हम आह्वान करते हैं। इन 'हविषों' को ग्रहणकर हमारी मनोवांछाओंको पूर्ण करो।

कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रा:
ज्वलतीं तृप्तां तर्पयन्तीम्
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां
तामिहोपाह्वये श्रियम्।

—जो साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा हैं, जो मंद-मंद मृदु-स्मितवाली हैं, जो स्वर्णावरणसे आवृत हैं, जो दयार्द्रा हैं, जो पूर्णकामा हैं, जो भक्तानुग्रहकारिणी हैं, जो कमलासना हैं, उन लक्ष्मी देवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धि ददातुमे।

—श्री देवि ! तुमने ही अपनी अनुकम्पासे कुबेरको देवताओंका मित्र बनाया है। कुबेर के कोष तथा चिंतामणिसे ऐश्वर्य-युक्त होकर हमारे देशमें निवास करो। हे यशस्विनी ! यहाँ आओ, हमारे राष्ट्रके यशकी अभिवृद्धि करो। हमारा राष्ट्र ऋद्धि-सिद्धिसे परिपूर्ण हो।

युग-युगोंसे तेजोपासनाका, मनाया जानेवाला यह महान् पर्व ही आजकी दीपावली है। युगों बीत गए हैं, पर आज भी दीपावलीकी रातमें, आलोककी छायामें, यज्ञकी धूम लहरियोंके साथ ही साथ हमें ऋषियोंकी पवित्र वाणी सुनाई पड़ती है। हम कह नहीं सकते कि तब हमारे प्राणोंके भीतर कितना और कैसा आह्लाद बरस पड़ता है ! हमारी प्रार्थना है, प्रतिदिन हमारे दीप जलते रहें, और प्रतिदिन ऋषियोंकी वाणी, हमारे श्रवणोंमें जीवनका मंत्र बनकर गूंजती रहे-गूंजती रहे।

—०—०—

लक्ष्मी-स्तवन

—हे मंगल निधे ! तुम्हारी अपरिमेय महिमाका मैं अकिंचन कैसे वर्णन कर सकूंगा ? तुम्हारे पतिदेव हैं पुरुष श्रेष्ठ भगवान् श्रीहरि। तुम्हारी शोभन शय्याके रूपमें निरंतर सेवा करते हैं शेषनाग। पक्षिराज गरुड़देव, जो वेदोंके आत्मा भी माने जाते हैं, तुम्हारे आसन तथा वाहन होते हैं। हे जगन्मोहिनी ! यह प्रपंच रूपिणी माया तुम्हारी यवनिका है। धनेश्वरी ! तुम स्वेच्छासे अयथार्थ, अन्ययथार्थ तथा विपरीतार्थके द्वारा लोकवासियोंको अज्ञान तिमिरमें. भ्रम गह्वरमें बहकाते भटकाते हुए परीक्षा लेती हो।

—हे लक्ष्मी ! ब्रह्मा, रुद्र आदि सुरगण सपत्नीक आकर तुम्हारी सेवा-आराधना करनेमें अपना सौभाग्य मानते हैं। अतएव देवि ! तुम्हारा नाम 'श्री' सत्य ही है। 'श्री' का अर्थ होता है—"जो दूसरोंके द्वारा पूजी या सेवाकी जाती हो।" ऐसी महिमामयी तुम देव-देवीके गुणगान करनेमें हम मंदमति कैसे समर्थ होंगे ?"

यामुन मुनि

ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरलाकी पुण्य-स्मृतिको चिरस्थायी बनानेकी एक महत्वपूर्ण योजना

"भारतीय संस्कृतिकी निधि श्रीबिरलाजीके व्यक्तित्व और कृतित्वका मूल्यांकन ऐसी पंचवटी होगा, जहाँ चिन्तनके क्षण सत्प्रेरणा देंगे और नियमित सारस्वत-साधनासे नित नये भावलोकोंका साक्षात्कार होगा।"

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानसेवासंघ को महत्वपूर्ण परामर्श

श्रीदेवदत्त शास्त्री

भारतीय संस्कृतिका मूल स्रोत धर्म है—वह धर्म, जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी प्राप्ति होती है और जिसकी व्याख्या मनु, याज्ञवल्क्य, गौतमादिसे लेकर तिलक, मालवीय एवं गाँधी जैसे चिन्तकों तक ने की है। भारतमें विभिन्न संस्कृतियोंका प्रवाह धर्म पर पहुँच कर केन्द्रित हुआ है। विभिन्न संस्कृतियोंको एक ही जीवन-दर्शनकी शृङ्खलामें जोड़नेका श्रेय धर्म को ही है। धर्म पर ही भारतीय सभ्यताकी नींव पड़ी है।

भारत धर्मप्राण देश है। हमारा राजनीतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत और व्यावहारिक जीवन धर्मसे ही नियंत्रित होता है। "यतो धर्मस्ततो जयः" कहकर भारतमें धर्मको सर्वोच्च स्थान दिया गया है। सत्य, अहिंसा, प्रेम, सद्भाव, समता एवं ईश्वरीय शक्तिके विश्वासके रूपमें धर्मकी अभिव्यक्ति हुई है।

भारतीय धर्मका सारतत्त्व हमें गीतामें समग्र रूपसे मिलता है। गीता-धर्म हमें बतलाता है कि व्यक्तिगत क्रिया-कलाप और सामाजिक आचरणकी चरम परिणति जीवन है। यही भारतीय प्रजाका दर्शन है, जो युग-युगान्तरसे भारतीय जीवन और विचारधाराको अनुप्रेरित करता आ रहा है। गीतोक्त कर्म, ज्ञान और भक्तिका सिद्धान्त, दर्शन भारतीय संस्कृतिके भौतिक, सामाजिक तथा निखिल विश्वपक्षोंमें सामंजस्यका प्रतीक है। इस सामंजस्यकी पूर्ण अभिव्यक्ति भारतीय धर्मके स्वरूपमें हुई और यही अभिव्यक्ति भारतीय संस्कृतिकी अनुपम विशेषता बन गयी। यही कारण है कि हजारों वर्ष राजनीतिक संघर्षों, राजनीतिक-दासताके बाद हमारी अन्तश्चेतना जाग्रत रही, हमारी संस्कृति जीवित रही और भारतीय-संस्कृतिकी समकालिक इतर संस्कृतियोंका अस्तित्व मिट गया।

गीताधर्म देश, काल, जातिकी सीमाओंसे ऊपर उठकर विश्व-समाजका समर्थन करता है। वह हमारे राष्ट्रीय व्यक्तित्वका निर्माण करता है। हमारे आध्यात्मिक, सामाजिक जीवन-मूल्योंको प्रतिष्ठापित करता है। "वसुधैव कुटुम्वकम्" गीतोक्त धर्मकी महती देन है।

ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोरजी विरला इसी गीतोक्त धर्मके निष्ठावान उपासक, साधक और आराधक रहे। उनका समग्र तपःपूत आर्ष जीवन इस धर्मको ही विकसित-प्रतिष्ठित करने में व्यतीत हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवासंघकी स्थापना भी इसी उद्देश्यसे की कि वह परम पुनीत श्रीकृष्ण-जन्मस्थलका विकास करके उसे ऐसा स्वरूप प्रदान करे, जो भारतीय नीति, संस्कृति एवं धर्मका केन्द्र वन जाय और जहाँसे देश-विदेशके जिज्ञासुगण दिव्य प्रेरणा प्राप्त करें।

अतः श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघका यह कर्तव्य है कि वह इस उद्देश्यकी पूर्तिके साथ-साथ अपने दिवंगत महान् संस्थापककी संपूर्ण लोक-हितकारी प्रवृत्तियोंकी ओर भी ध्यान दे और उन्हें क्रियान्वित करने अथवा आगे वढ़ानेका प्रयत्न करे। पुण्यश्लोक श्रीजुगलकिशोरजी विरला ने अपने सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय व्यक्तित्वका निर्माण और विकास किस ढंगसे किया था, राष्ट्र भाषा, राष्ट्रधर्म, सत्य, सदाचरण, न्याय तथा सामाजिक हितकी व्याख्या करनेवाला उनका जीवन-दर्शन कितना उदात्त रहा—इन सवका मूल्यांकन आगे आनेवाली पीढ़ीके हितमें करना संघका अनिवार्य कर्त्तव्य है। भारतीय संस्कृतिकी निधि श्रीविरलाजीके व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन एक ऐसी पंचवटी होगा, जहाँ चिन्तनके क्षण सत्प्रेरणा देंगे और नियमित सारस्वत साधनासे नित नये भावलोकोंका साक्षात्कार होगा।

इस उद्देश्यको क्रियान्वित करनेके लिए संघके समक्ष हम कुछ व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत कर रहे हैं :—

(१) श्रीजुगलकिशोरजी विरलाकी पुण्यस्मृतिमें तक्षशिला, विक्रमशिलाकी भाँति "जुगलशिला" नामसे एक शोधपीठकी स्थापनाकी जाय। शोध-पीठका मुख्य केन्द्र श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरामें रहे और उसके अन्तर्गत विभिन्न विषयोंके विशेषज्ञ-मनीषियोंके निदेशनमें भारतीय विद्याओं पर शोधकार्य किया जाय। उन शोध ग्रन्थोंको भारतीय-संविधान द्वारा स्वीकृत भाषाओंमें तथा सम्भव हो तो अन्तरराष्ट्रीय प्रमुख भाषाओंमें भी अनूदित कराकर प्रकाशित किया जाय।

(२) शोध-पीठकी स्थापना तो श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके तत्वावधानमें हो, किन्तु उसको राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे पूर्ण सफल वनानेके लिए उसका प्रशासन एवं आन्तरिक कार्य-संचालन एक शोध-समितिका गठन करके स्वतंत्र रखा जाय। शोध-समितिमें भारतके गण्य-मान्य मूर्द्धन्य मनीषी रखे जायं।

(३) ब्रह्मलीन श्रीविरलाजीके वार्षिक श्राद्धके अवसर पर उनके बहुमुखी व्यक्तित्व और कृतित्वपर श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुराके मासिक मुखपत्र "श्रीकृष्ण-सन्देश" का ऐसा विशेषांक प्रकाशित हो, जो भारतीय संस्कृति, धर्म, समाजका सन्दर्भ-ग्रन्थ माना जाय। जिसमें "अहो भारत भारतम्" महाभारतकारके इस उद्गारका साकार रूप उजागर हो उठे।

श्रीविरलाजी व्यक्ति अथवा मानवरूपमें एक महान् संस्था थे, भारतीय संस्कृतिके जीवंत रूप थे। उनका जीवन और कृतित्व राष्ट्र, धर्म और संस्कृतिके लिये समर्पित हो चुका

थे—वे विदेह थे। ऐसे यज्ञःशरीरसे अमर श्रीविरलाजीकी पुण्य-स्मृतिमें जो ग्रन्थ निकाला जाये, वह उनके व्यक्तित्व और कृतित्वके अनुरूप तो हो ही, विषय-वस्तुकी दृष्टिसे भी विराट हो, समग्र हो। ऐसा पूर्ण ग्रन्थ हो कि उसमें राष्ट्रकी जीवन-लीला, संस्कृतिकी पयस्विनी, धर्म का अखण्ड तेज और समाजका दर्पण प्रतिविम्बित हो उठे।

आशा है, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके सम्माननीय सदस्य हमारे सुझावों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे।

जय गीते

जयति-मोह मातंग-मर्दिनी शक्ति-सिंहिनी;
प्रकृति-त्रिगुण-तम-तोम-तरणि-कर-तेज-वाहिनी ;
जयति ब्रह्म-रस-स्रोतिनि, संसृति-सरित-तारिणी ;
परमहंस मानसी-मरालिनि वर विहारिणी ;

जय भगवत-श्रीमुख-निस्सृता,
पार्थ-व्याज जग-बोधिनी।
श्रीभगवत-गीता-देवि ! जय,
कर्मयोग-परिशोधिनी ॥ १ ॥

ज्ञान-उपासन-कर्म-समन्वय मत-प्रकाशिनी ;
अनासक्ति-बल योग-सांख्य-कृत भेद-नाशिनी ;
शुद्ध श्रेय सत-सार 'लोक-संग्रह'-प्रचारिणी ;
रहित राग फल-त्याग सिद्ध सिद्धान्त-धारिणी ;

जय भगवत-श्रीमुख निस्सृता,
पार्थ-व्याज जग-बोधिनी।
श्रीभगवत-गीता-देवि ! जय,
कर्मयोग-परिशोधनी ।।२।।

क्षात्र-धर्म-उद्धरणि, कर्म-कौशल-विधायिनी ;
पराधीनता-हरणि, राष्ट्र-नव-शक्ति-दायिनी ;
ईश-विराट-विभूति-व्याप्त अग-जग-विकासिनी ;
'मामेकं व्रज शरणं' निर्भय पद-प्रकाशिनी ;

जय भगवत-श्रीमुख-निस्सृता,
पार्थ-व्याज जग बोधिनी।
श्रीभगवत-गीता-देवि ।जय,
कर्मयोग-परिशोधिनी ।।३।।

श्रीवियोगीहरि

भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रका विवेकपूर्ण चिन्तन

"श्रीकृष्णके महान् व्यक्तित्वमें किसी ओरसे कोईभी कमी नहीं थी। वे सभी कालों और दृष्टियोंसे अनुपम एवं अद्वितीय शूर थे। वे कल्याण करनेवाली महान् आत्मासे सम्पन्न थे। वे विशुद्ध प्रेमी थे, वे दयालु थे, वे अद्वितीय ज्ञानी थे।"

शौर्य-भावके महान् नायक— भगवान् श्रीकृष्ण

डा० श्रीभोलानाथ 'भ्रमर'

शब्द कल्पद्रुममें शौर्यकी व्याख्या करते हुए लिखा गया है, "शूरस्य भावः कर्म वा शक्तिः"। शूरकी व्याख्यामें कहा गया है, 'विक्रमः उद्यमः शूर्य्यते', अर्थात् 'शूरयति विक्रमति इति वीर्यं प्रप्नोति इति।' संक्षिप्त हिन्दीशब्दसागरमें शूरके भाव, शूरता, वीरता, और बहादुरी को शौर्य माना गया है। वृहत् अँग्रेजी हिन्दीकोशमें अँग्रेजीके 'शिवैलरी'को आदर्श शूरकी विशिष्टता या गुण माना है। युद्ध-कौशल-प्रवीण, धार्मिक या नैतिक दान-वीर, शिष्ट योद्धा, असाधारण वीर, निर्बल या सत्यवादी दलका पक्ष ग्रहण करनेवाला, निःस्वार्थी, निर्हेतुक व्यक्ति शूर होता है। महाभारतमें आहत करने, मार डालने, क्षत-विक्षत करने, दृढ़ निश्चय, शक्तिशाली होने, दमदार होने, बली होने, दुर्धर्ष होनेको शौर्य-गुण माना गया है। ऋग्वेदमें भी साहसी, ताकतवर, मजबूत, फौलादी, महान् या असाधारण या अद्वितीय एवं अजेय योद्धाको शूर माना गया है। कुल मिलाकर देखें तो वीरता, पराक्रम, साहस, निर्भीकता, नायकत्व, वीर्यत्व, दिलेरी, पौरुष, प्रताप, प्रबलता, शक्ति, सामर्थ्य, महानता, संकल्प-शक्ति आदिको शौर्य कहा जा सकता है। श्रीकृष्ण चरित्रके अध्येता भलीभाँति जानते हैं कि कृष्णमें ये ही गुण प्रधान हैं और इतने प्रधान हैं कि संसारमें इनकी समता कर सकने वाला न हुआ है और न हो सकता है।

श्रीकृष्णके जन्मके समयका युग

भगवान् श्रीकृष्णका जन्म सांस्कृतिक दृष्टिसे एक भयानक संक्रान्ति-कालमें हुआ था। ब्रह्मर्षियों एवं राजर्षियों की यज्ञस्थलीके प्राणी लोभ, द्वेष, स्वार्थपरता, कातरता, भोग-वासना, साम्राज्यलिप्सासे प्रेरित होकर जल, थल और अन्तरिक्षको भस्मीभूत करनेवाले अस्त्र-शस्त्रोंका आविष्कार कर रहे थे। दम्भ, मोह, मदादि, आसुरीभावकी प्रधानता थी। बल-शक्तिका अहङ्कार बज रहा था। समाजमें अत्याचार, अविचार, दुर्विचार, संघर्ष, प्रतियोगिता, पर-द्रोह फैला था। आध्यात्मिक आदर्श नष्ट हो चुका था। नैतिकता समाप्त हो चुकी थी।

रूढ़ियोंका पालन ही धर्म हो चला था। राजाके भयसे शक्तिशाली, योद्धा, धर्मगुरु, दीक्षा-गुरु, कुल-गुरु भयानक अन्याय होते हुए देखकर भी चुप हो जाते थे। षड्यन्त्र और कूटनीतिका बोलबाला था। नैतिक बल नष्ट हो चुका था। अधर्मपरायण राष्ट्रशक्तियाँ प्रमुख हो रही थीं। आसुरी प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्दिता, वीभत्स संग्राम और कलह, हिंसा, घृणा, भय, दुर्बल पर अत्याचार, अवनतके प्रति उन्नतकी अवज्ञा, प्रभुत्वकामी कूट बुद्धि, शिक्षित वर्गकी प्रवंचना, ढोंग, राष्ट्रीय चरित्रका अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा था। वेदमत, उपनिषद् मत, कर्मकाण्ड, ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग, सांख्यमत, न्याय, वैशेषिक आदि विपरीत विचारधाराएँ समाजकी आत्माको मन, जीवन और चेतनाको—मथे डाल रही थीं। सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओंकी सीमाएँ टूट रही थीं।

युगान्तरकारी श्रीकृष्णकी क्षमता

ऐसे समयमें समाजको एक सुनिश्चित मार्ग दिखलाना, दृष्टि देना, दृष्टिकोण बदलना, सही बात कहना और ऐसे सामर्थ्यके साथ कहना कि लोग उसे मानें, बिखरे हुए सूत्रोंको कायदे से और सूझ तथा दूरदर्शिताके साथ ग्रथित करके या बंटकर ऐसी सुन्दर, सुपुष्ट एवं सुदृढ़ रज्जु तैयार करना जिसमें समाज हजारों वर्षोंतक बंधा हुआ सुरक्षित रहे—किसी साधारण व्यक्ति या व्यक्तित्वका काम नहीं है। उसके लिये आवश्यक बातें ये हैं:—

आपमें असाधारण शक्ति हो, आप उस शक्तिका योग्यता, कुशलता एवं औचित्यके साथ प्रयोग करते हों। आपमें क्षमता, सूझ, बुद्धि, योग्यता, सामर्थ्य तथा अनुभव हो, आत्मा परम हो, विभु हो, प्रभु हो, हृदय आवश्यकतानुसार सहज, सरल, तरल एवं कठोर हो, लक्ष्य स्पष्ट हो, उपयोगी और अनुपयोगी, श्रेष्ठ और मध्यम, हितकर और अहितकरमें भेद करके उन्हें अलग करनेकी दृष्टि हो और अधम, अहितकर, अनुपयोगीको मिटानेका दमखम हो, आप अनुपयोगी रूढ़ियोंका निर्ममतापूर्वक बिना किसी हिचकके और तत्परता पूर्वक विनाश कर सकें और जो धारण करने योग्य हो, उसे संशय रहित होकर विश्वास, निष्ठा एवं आस्थाके साथ अपना सकने योग्य क्रान्तिमयी चेतना या आत्मा हो, जो आपकी उचित बात न माने या आपका विरोध करे उसे या ऐसे अनन्त दुष्टोंको कुचलकर, पीसकर, वध-विनाश-हत्या करके उनका नामोनिशान मिटा देनेकी आपमें शक्ति हो और उस शक्तिका लोगोंको अनुभव हो। भारत जैसे विशाल देशमें इतना बड़ा कार्य करना था।

यह काम सरल बिल्कुल नहीं था। उसे करनेके लिए कोई योगीश्वर, प्रभु, सर्वसमर्थ परम आत्मा चाहिये। बुद्ध, महावीर, शंकर, दयानन्द और गाँधी भी वह काम उतनी सफलताके साथ नहीं कर पाये जितनी कुशलताके साथ श्रीकृष्णने किया था। यदि श्रीकृष्ण महाभारतकी सफल आयोजना न की होती एवं उसके कुशल सूत्रधार न होते तो समाजने 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली नीति सदा-सदाके लिये अपना ली होती और क्रान्तिहीन समाज रूढ़ होकर नष्ट हो जाता। श्रीकृष्ण इसीलिये पूर्ण परमात्मा परम ब्रह्म हैं कि उन्होंने यह काम अद्वितीय सफलताके साथ किया, मिटते हुए भारतीय समाजको बचा लिया, समाजको ऐसा दर्शन या दृष्टिकोण गीताका दिया, जिसमें भारतके समस्त प्राचीन एवं तत्कालीन विश्वासों, ज्ञाननिधियों, एवं सम्पत्तियोंका श्रेष्ठ-

तम अंश तो है ही, तबसे लेकर आजतक जिसकी उपयोगिता भी है। इसीलिये वे त्रिकालज्ञ हैं। श्रीकृष्णके महान् व्यक्तित्वमें किसी ओरसे कोई भी कमी नहीं थी। वे सभी कालों और दृष्टियोंसे अनुपम एवं अद्वितीय शूर थे। वे कल्याण करनेवाली महान् आत्मासे सम्पन्न थे। वे विशुद्ध प्रेमी थे, वे दयालु थे, वे अद्वितीय ज्ञानी थे, उद्धवको उन्होंने ज्ञान-निधिसे परिचित किया था, अर्थात् भक्तियोग, ज्ञानयोग, पूजाविधि, सांख्य-सिद्धान्त, गुण, मन निरोधिनी भिक्षु-गीता, तत्व, द्रव्यके गुणदोष, कर्म, वर्णाश्रम धर्म, आत्मस्वरूप, ऋद्धि-सिद्धि आदिका ज्ञान दिया था। वे महान् साहसी थे, वे क्रान्तिकारी थे। संगठन-कुशल थे। पराजय उन्होंने कभी जानी नहीं। उन्हें न कोई योद्धा जीत पाया, न धन-यश-वैभव, सम्पत्ति जीत पाई और न अप्रतिम, अनिन्द्य-सुन्दरी रूपसी प्रेमिकाओंका समूह जीत पाया। उनमें शक्ति, शील और सौन्दर्य—तीनों अपनी चरम सीमापर पाये जाते हैं। हाँ, उनका शील अनोखा अवश्य था। वे नानकके नन्हें दूब नहीं थे। उनमें छुईमुईके फूलवाला शील नहीं था। वह समर्थ महान् पुरुषका शील था—विवेकपूर्ण शील था, सिंह पुरुषका शील था। उनके शीलका स्वरूप देखिये—कंसको उन्होंने तब मारा, जब कंसके भेजे हुए दर्जनों असुर उनके प्राण लेनेके असफल प्रयत्न कर चुके थे—अज्ञात कुल शील कूबरीको सौन्दर्य और प्रेम दोनों दिया—कंसको मारकर राज्य न स्वयं लिया, न अपने पिताको दिया। शिशुपालकी गालियाँ सहन कर गये, अर्जुनके सारथी बने आदि। ये श्रीकृष्ण कल्पना नहीं हैं, ऐतिहासिक महान् पुरुष हैं—नर रूपमें पूर्ण परब्रह्म परमात्मा हैं।

श्रीकृष्णाय नमः

—हे मुरारे ! छप्पन कोटि यादव आपकी आराधना करते हैं। प्रसिद्ध अष्ट निधियाँ आपके प्रयोजनीय धन-राशिकी वर्षा करती हैं, अन्तःपुरके नौलाख प्रासाद आपके विलासके स्थान हैं। आपकी इस समृद्धिको देखकर कौन नहीं विस्मित होगा ?

—जिनके कृष्णवर्णकी दोनों भ्रूलताएँ थोड़ी झुकी हुई हैं, बरुनी बड़ी-बड़ी और घनी हैं, दोनों नेत्र अनुरागीके दर्शनके लिए चंचल हो रहे हैं, मधुर और कोमल वाणी है, अधरा कुछ-कुछ लाल है जिनकी वंशी-ध्वनिका माधुर्य मनको मतवाला कर देता है उन भुवन मोहन व्रजकिशोरको देखनेके लिये मेरे नेत्र लोलुप हो रहे हैं। हे गोविन्द ! आज बाला राधिका अपने कमल सदृश नेत्रोंसे अश्रु-वर्षण करती हुई मधुरतर कंठसे तुम्हारी नामावलीका गान कर रही है।

जिनमें स्वभावसे ही कोई दोष नहीं, जो सारे कल्याणमय गुणोंकी एक महाराशि हैं, उन निर्दिष्ट व्यूहोंके अंगी परम वरेण्य परब्रह्म कमलेक्षण श्रीकृष्णका मैं ध्यान करता हूँ।

"कामनामें विघ्न पड़नेपर मनुष्यमें क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे विवेक हीनता उत्पन्न होती है। विवेक-हीनतासे स्मृति भ्रमित हो जाती है और स्मृति भ्रमित हो जानेपर मनुष्य बुद्धि हीन हो जाता है। जब मनुष्यकी बुद्धि बिगड़ जाती है, तब तो फिर उसका सर्वनाश ही हो जाता है।"

दो महान् शत्रु—काम और क्रोध

श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह

पाप करना निषिद्ध कर्म है। यह आचरण शास्त्रके विपरीत है। पापका परिणाम दुःखमय है। सभी धर्मोंने पाप कर्मको बुरा माना है। पापका परिणाम महान् कष्टदायक बताया गया है। पाप कर्मके लिये मनुष्यको महान् रौरव नरकमें जाना पड़ता है, नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। यह जानते हुए भी मनुष्य क्यों अनजान बन जाता है? क्यों पाप कर्म करने लग जाता है? इच्छा न होनेपर भी किस प्रकार प्रभावित हो अपनी मनोवृत्ति दुष्कर्मोंमें लगा देता है? किस प्रेरणासे वह पाप कर्ममें फँस जाता है? इसका प्रेरक कौन है? इस पर हमें विचार करना है।

इसी प्रकारका प्रश्न अर्जुनने भगवान्‌से पूछा था—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको समझाते हुए कहा, पाप कर्मका प्रेरक है काम और क्रोध। यह रजोगुणसे उत्पन्न दुष्पूरणीय भोगेच्छावाला है। हे अर्जुन, इसको शत्रु समझो; क्योंकि इसकी तृप्ति कभी भी नहीं होती! उल्टे, इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती है। जिस प्रकार धूलसे आच्छादित हो जानेपर दर्पणमें कुछ दिखायी नहीं पड़ता, ठीक उसी प्रकार काम ज्ञानके प्रकाशको आवेष्टित कर लेता है, और मनुष्य ज्ञानहीन हो जाता है। कामकी भोगेच्छा बराबर अपूर्ण रहती है। जिसप्रकार अग्निमें घी डालनेसे वह अधिक प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार काम इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। भोगोंसे काम शान्त नहीं होता। उसकी पूर्तिमें बाधा पड़ी नहीं कि, मनुष्यमें दूसरा दोष—क्रोध उत्पन्न हो जाता है और वह मनुष्यको मोहमें डाल देता है:—

कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति संमोहः।

इससे यह निष्कर्ष प्रकट हुआ कि मनुष्यके शत्रुओंको उत्पन्न करनेवाला काम है, जो रजोगुणसे उत्पन्न होता है। प्रश्न उठता है, रजोगुणसे काम किस प्रकार उत्पन्न होता है?

प्रकृतिके नियमानुसार मनुष्यमें तीन गुण होते हैं—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। जिस गुणका जब प्रभाव अधिक होता है, तब वह अन्य दो गुणोंको दबा देता है। रजोगुणसे रागकी वृद्धि होती है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है।

रजो रागात्मकं वृद्धिःतृष्णा संगसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम्॥ (गीता १४।७)

हे अर्जुन, रजोगुणसे प्रेम करनेसे तृष्णा तथा आसक्ति उत्पन्न होती है। वह देहधारी को कर्मफांसमें बाँध देती है। जब रजोगुणका प्रभाव अधिक होता है, तब लोभ, प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा, कर्मोंमें आसक्ति, इन्द्रियोंमें अशांति, और कामनायें बढ़ने लगती हैं—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥ (गीता १४।१२)

प्रश्न है, मनुष्यमें रजोगुण कैसे उत्पन्न होता है? रजोगुण जब प्रबल होता है, तब वह सतोगुण और तमोगुण को दबा देता है। रजोगुण मनुष्यके आचार, विचार और खाद्य पदार्थो पर आधारित है। जो मनुष्य अधिक तिक्त, कड़ुवा, खट्टा, पूर्ण नमकीन, उष्ण, अधिक ठंडा, उच्छिष्ट, तीक्ष्ण और रुक्ष भोजन करता है या ऐसा भोजन करता है, जिससे खुश्की पैदा होती है, पेटमें जलन होती है, आँख-नाकसे आंसू गिरते हैं और प्यास लगती है, वह रजोगुण प्रधान होता है। मांसाहारी, गर्म मसालोंका अधिक सेवन करनेवाला, और लहसुन-प्याज खानेवाला भी रजोगुणी होता है।

रजोगुण-प्रधान प्रकृतिके लोगोंकी कामना अनन्त होती है। वह कभी पूरी नहीं होती। भोगोंकी तृष्णा बढ़ती ही रहती है। भोगोंकी तृप्तिके लिये मनुष्य अनेक पापाचार करता है। कर्तव्याकर्तव्यका विचार छोड़ देता है। कामनाओंकी पूर्तिमें बाधा उपस्थित होने पर क्रोध उत्पन्न होता है, जो मनुष्यका महान् शत्रु है। भगवान्ने कहा है :—

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति-विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (गीता २।६२)

कामनाओंकी पूर्तिमें विघ्न पड़ने पर मनुष्यमें क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे विवेक-हीनता उत्पन्न होती है। विवेकहीनतासे स्मृति-भ्रमित हो जाती है, और स्मृति-भ्रमित हो जानेपर मनुष्य बुद्धिहीन हो जाता है। जब मनुष्यकी बुद्धि बिगड़ जाती है, तब उसका सर्वनाश ही हो जाता है। इससे बचनेके लिये भगवान्ने कहा है :—

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्। (गीता ३।३७)

रजोगुणसे उत्पन्न काम और क्रोधकी तृप्ति नहीं होती, वे सदा भूखे रहते हैं, महान् पाप-युक्त हैं। इन्हें शत्रु समझो।

काम और क्रोध दोनों मनुष्यके वड़े शत्रु हैं। ये आत्माका हनन करते हैं। मनुष्य इन्हींके कारण पापाचारमें लगता है। ये ही मनुष्यको नरक भेजते हैं और बन्धनोंमें डाल देते हैं। मनुष्य पाप न करे, इसलिये इनसे वचना चाहिये। गीतामें भगवान्‌ने कहा है :—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोमस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।। (गीता २१)

आत्माका नाश करनेवाले काम, क्रोध तथा लोभ नरकके तीन द्वार हैं। अतएव मनुष्यको इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।

हमारे धर्मग्रन्थोंने मनुष्यके छः शत्रु वताये है—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर। मनुष्यको अपने उद्धारके लिये इन शत्रुओंसे वचना चाहिये।

इन शत्रुओंसे कैसे वचा जाय, इसके लिये हमारे शास्त्रकारोंने निर्देश किये हैं। सर्व प्रथम इन्द्रियोंका निग्रह किया जाना चाहिये, जिससे कि वे मनमानी न करें। यह अभ्यास से होता है। मनमें किसीके प्रति द्वेष न रखना चाहिये। जो भगवान्‌से प्राप्त है—अच्छा या बुरा, उसीमें संतोष करना चाहिये। यह संसार अनित्य और सारहीन है—यह जानना चाहिये तथा किसीका कोई नहीं है, यह जानकर मोह-मायामें फँसना नहीं चाहिये। यदि मनुष्य भगवदइच्छा से सभी साधनोंसे युक्त है, तो उसे गरीव, अमीर सवपर एक भाव रखना चाहिये। अहंकार न करना चाहिये। सारा संसार ईश्वरमय है, कण-कणमें ईश्वर व्याप्त है—यह जानकर किसीसे ईर्ष्या और वैर-भाव न रखना चाहिये। दुखः-सुखको यह समझकर कि यह प्रभुकी देन है, सहर्ष स्वीकार करना चाहिये—सदा संतुष्ट रहना चाहिये। संसार नश्वर है, सव कुछ अनित्य है, अपना शरीर भी नाशवान है और मृत्यु निश्चितरूपसे आयेगी ही—यह वातें सदा स्मरण रखनी चाहिये। सर्वेश्वर भगवान्‌की शरणमें आत्म समर्पण कर उन्हीको सदा भजना चाहिये—ऐसा करनेसे सात्विक गुणकी वृद्धि होगो। इस प्रकार हरिस्मरणसे हम सभी पापाचारोंसे वच जायेंगे।

भक्ति-विभोर वाणी

गिरि कीजै गोधन मयूर नव कुंजन को, पसु कीजै महाराज नंद के बगर को।
नर कीजै तौन जौन राधे राधे नाम रटै, तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर को।
इतने पै जोई कछु कीजियै कुंवर कान्ह, राखिये न आन फेर 'हठी' के झगरको।
गोपी पद पंकज-पराग कीजै महाराज, तृन कीजै रावरेई गोकुल नगरको।
फटिक सिलानके महल महरानी बैठी, सुरन की रानीं जुरि आईं मन भावतीं।
कोऊ जलदानी, पानदानी, पीकदानी लिएँ, कोऊ कर वीनै लै सुहाए गीत गावतीं।
कोऊ चौंर ढारैं चारु चाँदनी से चोज बारे, 'हठी' लैं सुगंधन की अलकैं बनावतीं।
मोतिन के, मनिन के, पन्नन प्रवालन के, लालन के, हीरन के हार पहिरावतीं।

कवि 'हठी'

गीताकी मार्मिक विवेकपूर्ण व्याख्या

"गीता भारतीय संस्कृतिकी आत्मा है। विश्वके सभी धर्मों की जन्म-भूमि है। गीताकी महत्ताके संबंधमें 'वाराह-पुराण' में कहा गया है—'स्वयं ईश्वर गीताके आश्रयमें रहते हैं। गीता उनका श्रेष्ठ घर है। गीताके ज्ञानका सहारा लेकर ही वे तीनों लोकों का पालन करते हैं।"

भारतीय संस्कृतिमें गीताका स्थान

श्रीनागेश्वरसिंह 'शशीन्द्र' विद्यालंकार

विश्वकी प्राचीनतम संस्कृतियोंमें भारतीय संस्कृतिका उल्लेख किया जाता है। यद्यपि समय-समय पर आक्रमणकारियोंने भारतीय संस्कृति को नष्ठ करनेकी चेष्टा की; किन्तु उन सारे अवरोधोंको दूरकर भारतीय संस्कृति जीवित रही। जिस संस्कृतिके मूलमें गीताकी दिव्य वाणी गूँज रही है और जिस संस्कृतिके सामने राम और कृष्णके भव्य आदर्श वर्तमान हैं?' वह संस्कृति भला कैसे नष्ट हो सकती है। श्रीकृष्णकी दिव्य वाणीमें व्यक्त यह सर्वशक्तिमयी है। इसमें सभी शास्त्रोंका सार भरा है। भगवान् वेदव्यासने कहा है :—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता मनन करने योग्य है, अन्य शास्त्रोंके संग्रहकी क्या आवश्यकता है। गीताका ही भली प्रकारसे गान करना चाहिए। क्योंकि यह भगवान् विष्णुके श्रीमुखसे प्रकट हुई है।

गीता वस्तुतः हमारी माता है। इसके द्वारा प्रचारित दिव्य संदेश न केवल भारत-भूमि के लिए वरन् सम्पूर्ण विश्वके लिए सुधा—तुल्य हैं। यह दुखितोंके लिए आशाकी किरणें विखेरनेमें समर्थ है और निराश हृदयोंमें प्रेरणाकी वंशी फूंकनेमें सहज सबल, दुःखके सागरको पार करनेके लिए यह दृढ़ पतवार है और है शाश्वत शांतिकी ओर बढ़ानेका अभूतपूर्व सोपान। जीवन संघर्षमें पिछड़े कितने ही यात्रियोंको इसने विकासके पथ पर बढ़ने की प्रेरणा दी है।

गीताके अठारह अध्यायोंमें धर्म, अर्थ और मोक्षकी राह दिखाई गयी है। मानवकी चेतनाको उदात्त बनानेकी जैसी चेष्टा 'गीता'ने की है, उसके कारण सम्पूर्ण यूरोपमें गीताकी धूम मची और वहांके विचारकोंने 'गीता'का मुक्त हृदयसे स्वागत किया। गीताके माध्यमसे भारतीय संस्कृतिने विश्वके महान् चिन्तकोंको आकर्षित किया।

आजसे पांच-छः हजार वर्ष पूर्व ज्ञान, विज्ञान, धर्म कर्म एवं मानव जीवनकी जैसी तर्क-संगत, बुद्धि सम्मत व्याख्या 'गीता' में की गयी, वैसी व्याख्या अन्यत्र नहीं मिलती। इसीलिए तो

प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक हेम्वोल्डने कहा था—'गीता ही एकमात्र दार्शनिक संगीत है। विश्व की किसी भी भाषामें ऐसी कृति नहीं मिलती।' टी० डब्लू हावरके मतानुसार—'गीता ऐसी महत्वपूर्ण कृति है कि उसका नाश संभव नहीं।'' इसी तरह सर एडविन आरनाल्डने स्वीकार किया था कि "गीताके अनुवादके बिना अँग्रेजी साहित्य अपूर्ण रहेगा।"

गीताके द्वितीय अध्यायमें स्थित प्रज्ञकी जो व्याख्याकी गयी है, वही वस्तुतः सर्वश्रेष्ठ मानवका वास्तविक रूप है। यह 'स्थितप्रज्ञ' पुरुप मनकी सभी कामनाओंको त्यागकर अपनी आत्मामें ही संतुष्ट रहता है। सुख-दुःख, राग-विराग, द्वेप-कलहसे ऊपर उठकर वह अपनी भावनाओंपर विजय-सिद्धि प्राप्त करता है :—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

आत्माकी अमरता स्वीकारकर 'गीता'ने भारतीय जन मानसको एक महत्वपूर्ण सम्बल दिया है। हम अविद्या मायाके कारण ही आत्माको नाशवान् समझते हैं। वास्तविकता तो यह है कि आत्मा जन्म-मरणके वन्धनसे ऊपर और अविनाशी है :—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानिदेही॥

× × ×

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

कर्मके सम्वन्धमें 'गीता'में जो दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है वह वस्तुतः मानव जीवनकी यात्राके लिए परम उपादेय और कल्याणकारी है। स्वार्थ अहंकारसे, रहित होकर जो कर्म किया जाता है, वही वास्तविक कर्म है। मानवका अधिकार इतना ही है कि वह कर्म करे. फलकी चिन्ता नहीं :—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

कर्म करनेमें ही तेरा अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा कर्म न करनेमें भी तेरी आसक्ति न हो। तभी तो युद्धसे विमुख होने पर भगवान्ने अर्जुनसे कहा था :—

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥

× × ×

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गंजित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

अपने धर्मको देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है, क्योंकि धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई, कल्याणकारक कर्त्तव्य क्षत्रियके लिए नहीं है, इसलिए हे अर्जुन ! युद्धके लिए निश्चयवाला होकर खड़ा हो ।

इसी क्रममें श्रीकृष्णने कहा :—

योगस्थः कुरु कर्माणि संङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

अर्जुन ! तू आसक्तिको त्यागकर सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ, कर्मोंको कर ! समत्व ही तो योग है ।

कर्त्तव्यके सम्बन्धमें 'गीता' द्वारा प्रतिपादित मान्यताओंको स्पष्ट करते हुए योगी अरविन्दने 'गीता की भूमिका' नामक पुस्तकमें लिखा है—"ईश्वरको जानो और आत्मरूपको पहचानो । अधिकारकी रक्षा करो और संसारमें दुर्बलता तथा भयसे ऊपर उठकर अपना कार्य करो । तुम अविनाशी हो । जन्म और मरणकी कोई महत्ता नहीं । सुखों और दुखोंकी कोई सार्थकता नहीं । अपने आनन्द और दुखकी ओर न देखकर उन चोटियोंकी ओर अपनी दृष्टि केन्द्रित करो जिन पर तुम्हें चढ़ना है । केवल एक ईश्वर पर भरोसा रखो और पूरे उत्साहके साथ अपना कर्त्तव्य करते जाओ । ईश्वर यही चाहता है ।"

गीता भारतीय संस्कृतिकी आत्मा है । विश्वके सभी धर्मोंकी जन्मभूमि है । गीताकी महत्ताके सम्बन्धमें 'वाराह पुराण'में कहा गया है—

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम् ।
गीता ज्ञान मुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालयाम्यहम् ।।

स्वयं ईश्वर गीताके आश्रयमें रहते हैं । गीता उनका श्रेष्ठ घर है । गीताके ज्ञानका सहारा लेकर ही वे तीनों लोकोंका पालन करते हैं ।

परमोत्तमधाम वृन्दावन

—गोवृन्दकी वृद्धि चाहनेवाले अक्लिष्टकर्मा भगवान् श्रीकृष्णने अपने मनमें श्रीवृन्दावनका ध्यान किया ।

जहां तक व्रजकी सीमा तथा उसमें जो वन-उपवन, गिरि, नदी आदि हैं, उनका पूजन करो । यही हम लोगोंका एकमात्र कल्याणप्रद आश्रय है ।

—ब्रह्मका परमैश्वर्य्य नित्य वृन्दावनके आश्रय है, अतः व्रजमें श्रीकृष्णका परमोत्तम धाम श्री वृन्दावन है ।

—सामवेदीय श्रुतिमें श्री राधाका अमर नाम वृन्दा है, उसके रमणीय क्रीड़ावनका ही नाम श्री वृन्दावन है ।

—व्रजके द्वादशवनोंमें श्री वृन्दावन प्रधान है, जो सतत वृन्दादेवीसे परिरक्षित है । महापातक नाशक वृन्दावन और तदस्थित श्रीगोविन्ददेवजीका जो जन दर्शन करते हैं, वे कदापि यमपुर नहीं जाते, प्रत्युत सद्गतिको प्राप्त करते हैं । [पुराणोंसे]

पुरुषार्थको सजीव पौराणिक गाथा

"अर्जुन, तुम्हारा साहस, तुम्हारा पुरुषार्थ, और तुम्हारी दृढ़ता धन्य है। जो लोग पुरुषार्थ, साहस, और दृढ़ताका सहारा लेते हैं उन्हें, तुम्हारी ही भाँति लक्ष्यमें सिद्धि प्राप्त होती है।"

सिद्धिका मंत्र—पुरुषार्थ

श्रीकैलाशविहारी

पाण्डव द्यूत क्रीड़ामें पराजित होकर, वन-वन परिभ्रमण कर रहे थे। दुर्योधनके छल-छद्मका चक्र चल रहा था। पाण्डव सघनसे सघनतर वनोंमें घुसते जा रहे थे, और दुर्योधन, पाण्डवोंके सर्वांतके लिए अपने छल-छद्मका प्रसार करताही जा रहा था। पाण्डवोंके अनन्य सहचर चार थे—धर्म, पुरुषार्थ, वीरता, और एकता। पाण्डव अपने इन चारों सहचरोंकी शक्ति से दुर्योधनके कपट-जालोंको छिन्न-भिन्न करते ही जा रहे थे—करते ही जा रहे थे।

अर्जुन वीर थे, पराक्रमी थे। लक्ष्य-भेदमें अर्जुनकी समानता करनेवाला धरती पर कोई न था। पर वह युग दिव्यास्त्रोंका युग था। जिसके पास दिव्यास्त्र होते थे, विजय उसीकी होती थी—संकटोंके बादल उसीके टलते थे। महा पुरुषार्थी अर्जुन अपने भाइयोंकी अनुमति लेकर, चल पड़े दिव्यास्त्रोंकी प्राप्तिके लिए, हिमालयके अंचलकी ओर। वे हिमालयके अंचलमें, बैठकर तप करेंगे, और देवताओंसे दिव्यास्त्र प्राप्त करके, युग-युगके लिए अपनी विजयकी कहानी छोड़ जायँगे।

अर्जुन अपने लक्ष्यमें डूबे हुए बढ़ते जा रहे थे, हिमालय की ओर—देव-भूमि हिमालय की ओर। सहसा वे रुक गए, और ध्यानसे एक वृक्षकी ओर देखने लगे। वृक्षके नीचे एक योगी खड़ा था, लम्बी-लम्बी जटाएँ, घुटनोंको स्पर्श कर रही थीं। आकृति ऐसी दीप्तिमान् थी, मानों बाल सूर्यकी किरणें खेल रही हों। योगीकी दृष्टि भी अर्जुन पर पड़ी, और वह मुसकुरा उठा। साथ ही उसने गंभीर वाणीमें प्रश्न किया—"कौन हो तुम ? इस देव-भूमि, हिमालयके अंचलमें, शस्त्रोंसे सज्जित होकर कहाँ जा रहे हो ?'

अर्जुनके मुखसे निकल पड़ा—"मेरा नाम अर्जुन है।"

योगीने विस्मयपूर्ण स्वरमें कहा—"अर्जुन ! पांडव-अर्जुन !"

अर्जुनने योगीकी ओर देखते हुए उत्तर दिया—"हाँ, वही अर्जुन, पांडव-अर्जुन !"

योगीकी आकृतिपर गंभीरता दौड़ पड़ी। उसके नेत्र चढ़ गए। उसने चढ़े हुए नेत्रोंसे अर्जुनकी ओर देखा, और देखते ही देखते प्रश्न किया—"पर यहाँ क्यों आए हो?"

अर्जुनने दृढ़तासे उत्तर दिया—"तपके द्वारा दिव्यास्त्र प्राप्त करने।"

योगी व्यंगके साथ अट्टहास कर उठा, और साथ ही हँसते-हँसते बोल उठा—"तप करोगे इस वेशमें! आज तक तो कहीं सुना नहीं, कि शस्त्रोंसे सज्जित कोई मनुष्य भी तप करता है?"

योगीने अर्जुनको उपहसित ही नहीं किया, उनके सम्मुख वनकी विभीषिकाओंके चित्र भी खींचे, हृदय कंपक भयकी तस्वीरेंभी अङ्कित की, और भूख-प्यासके मार्मिक दृश्योंका भी चित्रण किया। पर अर्जुन विचलित न हुए। वे बड़े धैर्यसे योगीके व्यंग-बाणोंको चुपचाप सहते रहे—सुनते रहे। फिर दृढ़ता पूर्वक बोल उठे—"योगिराज, मैं क्षत्रिय हूँ। विपत्तियों, बाधाओं, और भयद स्थितियोंसे संघर्ष करना ही मेरा इष्ट है। मैं इन सबसे लड़कर, अपने लक्ष्यकी सिद्धि करूँगा—अवश्य सिद्धि करूँगा।"

अर्जुनकी दृढ़ता, और उनका अडिग धैर्य! योगीकी आकृति पर आह्लाद बरस पड़ा। अर्जुनने विस्मयके साथ देखा, योगी योगी नहीं! वह तो योगीके रूपमें स्वयं देवराज इन्द्र थे। इन्द्रने प्रसन्नताके स्वरमें कहा—"अर्जुन, तुम्हारी दृढ़ता, और तुम्हारा धैर्य प्रशंसनीय है। तुम देवाधिदेव शिवजीको संतुष्ट करो। उनकी दयासे ही तुम्हें वह दिव्यास्त्र प्राप्त होगा, जिसकी कामनासे तुम यहाँ आये हो।"

इन्द्रका आदेश! अर्जुन शिवाराधनामें जुट पड़े। कितने ही दिन बीत गए! प्रतिदिन शिवकी निष्ठा पूर्वक आराधना, उन्हें भक्ति भावसे माल्यार्पण! एक दिन अर्जुन विस्मित हो पड़े, यह देखकर, कि उनकी ओर एक वनैला शूकर द्रुतगतिसे दौड़ता हुआ चला आ रहा है।

अर्जुनने चट धनुष पर बाण चढ़ाया, और पलक मारते ही शूकर पर चला दिया। पर जब तक अर्जुनका बाण शूकरको लगे और लगे, उसके पूर्व ही शूकरके पीछे पीछे दौड़कर आते हुए व्याघने अपने बाणसे शूकरको वेध दिया।

अर्जुन कुपित हो उठे। उन्होंने व्याधको डपटते हुए कहा—'यह शूकर मेरे बाणका लक्ष्य था। तुमने अपने बाणसे इसे क्यों वेधित किया?"

व्याधने उत्तर दिया—"तुम बड़े दर्पी जान पड़ते हो। तुम्हें जानना चाहिए, यह वन है—हिमालयका अंचल है। यहाँकी धरती, और यहाँकी धरतीका एक-एक कण मेरा है—सब पर मेरा स्वामित्व है।"

अर्जुनकी कोपाग्निमें घृतकीधार सी टपक पड़ी। भौहें कुटिल हो गईं। नथने फड़क उठे। रोष पूर्ण स्वरमें उन्होंने कहा—"जान पड़ता है, मृत्यु तुम्हारा आवाहन कर रही है।"

व्याधभी दबनेवाला नहीं! अर्जुनके स्वरमें ही वह भी बोल पड़ा—"यही बात तो मुझे भी तुम्हारे लिए दिखाई पड़ रही है। क्यों मेरे बाणोंका शिकार होना चाहते हो? जाओ चले जाओ।"

अर्जुनके धैर्यका तार टूट गया। उन्होंने कुपित होकर व्याध पर वाण छोड़ दिया। व्याधने भी वाणका उत्तर वाणसे ही दिया। दोनों ओरसे वाण पर वाण छूटने लगे। न अर्जुन के वाण रुकते थे, और न व्याधके। देखते ही देखते, अर्जुनका शरीर रुधिरसे आरक्त होगया। उधर व्याधके शरीर पर अर्जुनके वाणोंका रंचमात्र भी प्रभाव न पड़ रहा था। अर्जुनने व्याध पर तीखेसे तीखे वाण चलाये पर वे सभी वाण व्याधके शरीर पर लग कर इस प्रकार धरती पर गिर पड़े, मानों पुष्प हों !

अर्जुनके कोपकी सीमा न रही। उनके शरीरमें पैरसे लेकर सिर तक अग्निकी तरंगें से छिटक पड़ीं। वे धनुष-वाण फेंक कर. खड्ग लेकर व्याध पर टूट पड़े। पर आश्चर्य ! ज्योंही उन्होंने खड्गसे व्याध पर प्रहार किया, खड्ग टूटकर खंड-खंड हो गया। अर्जुनके प्राण झंकृतसे हो उठे। वे विद्युत्की तरह झपटे, और व्याधको पकड़ कर मल्ल युद्ध करने लगे।

व्याध भी मल्ल-युद्धमें रत हो गया, पर साथ ही वह ओठोंके वीचमें मन्द-मन्द मुसुकुरा रहा था। उधर अर्जुन वायु-वेगसे झपट रहे थे, व्याधको नीचे गिरानेके लिए दाँव पर दाँव लगाते जा रहे थे।

हठात् अर्जुनकी दृष्टि व्याधकी ग्रीवा पर पड़ी हुई पुष्प-माला पर पड़ी। अर्जुनकेअं तर-अंतरमें स्वर गूँज उठा—"अरे यह तो वही पुष्प माला है, जो मैंने आज ही शिवाराधनामें सर्मापतकी है। तो क्या यह व्याध स्वयं साक्षात् देवाधिदेव महादेव ही हैं।"

अर्जुन पृथक् हट कर व्याधकी ओर देखने लगे। अर्जुनकी रग-रगमें श्रद्धाका सागर उमड़ उठा। उन्होंने ललक कर महादेवके पैर पकड़ लिए। अर्जुनने क्षण मात्रमें ही, अपने नयनोंके आँसुओंसे महादेवके युगल चरणोंको भिगो दिया।

आशुतोषने स्नेहसे अर्जुनको उठाकर दिव्यास्त्र प्रदान करते हुए कहा—"अर्जुन तुम्हारा साहस, तुम्हारा पुरुषार्थ और तुम्हारी दृढ़ता धन्य है। जो लोग पुरुषार्थ, साहस और दृढ़ताका सहारा लेते हैं, उन्हें तुम्हारी ही भाँति लक्ष्यमें सिद्धि प्राप्त होती है।"

महाभारतमें महादेव और अर्जुनका यह युद्ध 'किरातार्जुन' युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। यर हम तो इसे पुरुषार्थ, साहस और दृढ़ताकी अमरगाथा ही कहेंगे। क्योंकि इससे हमारे सामने पुरुषार्थ, साहस, और दृढ़ताका चित्र ही अंकित होता है।

गोपियाँ, श्रीकृष्णके प्रति

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजें।
तब वे लता लगत हीं सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजें।
वृथा बहत जमुना-जल. खगरो, वृथा कमल-फूलनि अलि गुंजें।
पवन पानि घनसारि सुमन दै, दधि-सुत किरन भानु भई भुंजें।।
ऐ ऊधो कहियो माधव सौं मदन मारि कीन्हीं हम लुंजें।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस कौं मग जोवत अँखियाँ भई घुंजें।।

'सूरदास'

"धर्मके पथसे भूले हुए लोगो, 'धर्म' गीताका सन्देश लेकर तुम्हारे सामने खड़ा है। आँखें खोलकर 'धर्म' को समझो, और उसके संदेशको वास्तविक रूपमें ग्रहण करो। फिर तो सफलता, सुख और शान्ति तुम्हारा ही वरण करेगी।"

हे धर्म, तुम्हें प्रणाम है

श्रीदेवप्रिय शर्मा

'धर्म' एक ऐसा शब्द है जिसका लोकमें सबसे अधिक प्रचार है। साधारण रूपमें शिक्षित, अशिक्षित, मूर्ख और विद्वान् सभी बातचीतमें धर्मका प्रयोग करते हैं। कई अवसरों पर शराबियों, चोरों और जुवाड़ियों तथा लम्पटोंको भी धर्मका नाम लेते देखा जाता है। न्यायालयों और धारा सभाओंका कार्य 'धर्म' से प्रारंभ किया जाता है। इस रूपमें यदि हम 'धर्म' को 'ईश्वरका सहपंथी कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी क्योंकि, 'धर्म' के अतिरिक्त 'ईश्वर' ही एक ऐसा शब्द है, जिसकी 'लोक' में सबसे अधिक गूंज है। पर जिस प्रकार 'ईश्वर' के संबंधमें लोकमें भ्रम, अज्ञानता और मत अनैक्यता है, उसी प्रकार 'धर्म' के संबंधमें भी। हम सब 'ईश्वर' 'ईश्वर' अवश्य कहते हैं, पर 'ईश्वर' क्या है,—यह प्रश्न करने पर प्रायः 'अवाक्' ही हो जाना पड़ता है। इसी प्रकार 'हम सब' 'धर्म, धर्म' अवश्य कहते हैं, और अपने जीवनके प्रत्येक चरण पर 'धर्म' का नाम लेते हैं, पर 'धर्म' क्या है कदाचित् हम इसे नहीं जानते। यही कारण है, कि हम 'धर्म' में आस्था रखते हुए भी 'धर्म' के वास्तविक रूपको ग्रहण नहीं कर पाते, और जब हम 'धर्म' के वास्तविक रूपको ग्रहण नहीं कर पाते, तो 'धर्म-ग्रहण' से प्राप्त होने वाले लाभोंको हम कैसे उठा सकते हैं?

'धर्म' को वास्तविक रूपमें ग्रहण करनेके लिए हमें 'धर्म' के वास्तविक रूपको समझना परमावश्यक है। 'धर्म' के वास्तविक रूपको समझनेके लिए, हमें वेदसे लेकर अपने अब तकके 'धर्म ग्रंथों' और धर्माचार्योंके कथन-सूत्रोंका मंथन करना होगा। तो फिर आइए देखें, कि वेदोंमें 'धर्म' की व्याख्या किस रूपमें की गई है, या यों कहें, कि वे कौनसे 'आचार' या 'विचार' हैं, जिन्हें वेदोंमें 'धर्म' के रूपमें ग्रहण किया गया है। वेदोंमें 'ऋग्वेद' सबसे अधिक प्राचीन और 'पूर्वका' माना जाता है। सबसे प्रथम 'धर्म' शब्दका प्रयोग 'ऋग्वेद'

में ही मिलता है। यद्यपि वह शब्द 'धर्म' नहीं, 'ऋत' है, पर उसका प्रयोग 'धर्म' के रूप में ही किया गया है। सृष्टिके संपूर्ण घटना-चक्र, जिसमें सूर्य, पृथ्वी, समुद्र, तारे, ग्रह, उपग्रह आदि हैं, विशिष्ट प्रकारके नियमोंसे ही संचालित होते हैं। इसी प्रकार 'जीवन' भी नियमों से ही बँधा हुआ है। 'ऋग्वेद' का 'ऋत' शब्द 'धर्म' के रूपमें हमें नियमोंकी ओर ही प्रेरित करता है। 'ऋत' शब्दके भीतर 'नियमों' और 'संयमों' की डोरीमें बँधकर चलनेका आदेश है। वे नियम और संयम प्रत्येक क्षेत्रमें हो सकते हैं—प्राकृतिक जीवनमें भी, और साधारण जीवनके दैनिक कार्योंमें भी। यदि हम 'नियम और संयम' को अधिक विस्तारके साथ देखें, तो इसके भीतर उन सभी कार्यों, आचरणों और व्यवहारों तथा विधि-विधानोंका सुचारु रूपसे 'समावेश' या प्रतिपादन तथा 'प्रतिपालन' हो जाता है, जो सुख, शान्ति और सफलता के स्रोत माने जाते हैं। फिर तो इस कथनमें अत्युक्ति नहीं हो सकती, कि 'ऋग्वेद' ने हमें 'धर्म' के रूपमें 'नियमों' और 'संयमों' के मार्ग पर चलनेके लिए प्रेरित किया है।

'ऋग्वेद' के 'ऋत' या 'धर्म' में 'सर्वोच्च' या सर्वव्यापी कल्याण-विचार समाहित है। 'व्यक्तिसे लेकर 'समाज' और राष्ट्रके संपूर्ण क्षेत्रीय 'कल्याण' और 'हित' ऋग्वेदके 'ऋत' या 'धर्म' में समाविष्ट हैं। ऋग्वेदके एक प्राचीन ऋषि, नारायणने 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' की घोषणा करके इसी आशयकी पुष्टि की है। "त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य: अतो धर्माणि धारयति" में भी 'धर्मको सर्वोच्च, और 'मंगलमय' रूपमें स्वीकार किया गया है। 'धर्माणि धृताम्' में धर्मको ही जीवन, समाज और राष्ट्रके कल्याण-कल्पवृक्षके रूपमें स्वीकार किया गया है। केवल ऋग्वेदमें ही नहीं, अथर्ववेदके सूत्रोंके अनुसार भी 'धर्म' को सर्व कल्याण के रूपमें विवेचित किया गया है। यहाँ तक, कि 'धर्म धृता' कहकर पृथ्वीको 'धर्म-द्वारा' धारण की हुई बताया गया है। यदि हम इसके विशद-रूप को देखें, तो यहाँ भी हम 'धर्म' को 'संयम', नियम, और पवित्र आचरणोंके रूपमें ही पायेंगे। क्योंकि पृथ्वी जिसके द्वारा धारण की गई है, और जिसके द्वारा संपूर्ण सृष्टिके कार्य यथावत् चलते हैं, वह संयम, नियम, पवित्र आचरण और 'सत्कर्मों' को छोड़कर और कुछ नहीं है।

महर्षि वाल्मीकि रचित 'रामायणमें' 'चरित्र' और पवित्र आचरणके रूपमें 'धर्म' की व्याख्याकी गई है। "रामो विग्रहवान् धर्म:" में महर्षिने 'राम' को ही शरीर-धारी धर्म के रूपमें स्वीकार किया है। सच है, रामने मनुष्य, रूपमें ही जन्म धारण किया था, पर वे पवित्र आचरण, चरित्र, त्याग, नियम पालन, संयम, और 'कर्तव्य पालन' की समष्टि थे। अत: महर्षि वाल्मीकिने अपने 'रामायण' में 'राम' को जिस 'धर्म' के शरीरके रूपमें संमानित किया है, वह 'धर्म' केवल पवित्र आचरण, चरित्र, त्याग, नियम पालनको छोड़कर और कुछ नहीं है। 'महाभारत' में वेद व्यासजीने 'धर्म' की व्याख्या जिस रूपमें की है, वह बड़ी स्पष्ट और अर्थपूर्ण है। उन्होंने 'धर्म' पर प्रकाश डालते हुए निम्नांकित शब्दोंका प्रयोग किया है—

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः।
यत् स्याद् धारणायुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः।

—"उस महान् धर्मको प्रणाम है" जो मनुष्योंको धारण करता है। सबको धारण करने वाले जो नियम हैं, वे धर्म है।" व्यासजीके शब्दोंमें प्रविष्ट होकर यदि देखें, तो सर्व मनुष्योंको धारण करने वाला 'धर्म' भी सत्य, नीति, पवित्र आचरण, कर्तव्य पालन, परोपकार, अहिंसा, नियम पालन और संयम ही है। भगवान् श्रीकृष्ण तो 'धर्म' को इतना महत्व देते हैं, कि वे 'गीता' में 'धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे' की घोषणा करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने जिस धर्मकी 'संस्थापना' के लिए यह घोषणा की है वह धर्म अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सदाचार, सत्य, संयम, परोपकार, अस्तेय, संतोष, धैर्य और दमकी ही समष्टि है। भगवान् श्रीकृष्णके महा-चरित्रका यदि गंथन किया जाय, तो वे आदिसे लेकर अंत तक इसी 'धर्म-चित्र' का निर्माण करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

'मनु' और याज्ञवल्क्यने भी 'धर्म' के रूपमें नियमोंके पालन और 'संयम' पर बड़ा बल दिया है। केवल एक किसी क्षेत्रमें ही नहीं, जीवनके संपूर्ण क्षेत्रोंके लिए उन्होंने 'नियमोंके पालन' और 'संयम' के महत्वकी प्रशंसा की है। उनके 'नियमों के पालन' और 'संयम' में 'सर्व हिताय' की ही भावना है, और 'सर्व हिताय' केवल अहिंसा, अस्तेय, संतोष, सत्य, दम, और सदाचार तथा परोपकार ही है। 'मनु' द्वारा उद्घोषित 'धर्म' के उन दस लक्षणोंमें, जिनकी समष्टिको धर्म कहते हैं, अहिंसा, अस्तेय, सत्य, अक्रोध और दम आदिका ही समावेश है। महात्मा बुद्धने 'धम्मं सरणं गच्छामि' कहकर 'धर्म' के महत्वका नवीन और अन्तिम उद्घोष किया है। महात्मा बुद्धके चरित्रका मंथन करनेसे ज्ञात होता है कि उन्होंने जिस धर्म की शरणमें जानेकी बात कही है, वह धर्म अहिंसा, सत्य, दया, जितेन्द्रियता, परोपकार, सदाचरण और शुचिता ही है। आधुनिक युगके मनीषी महर्षि अरविन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ और महर्षि रमण आदि ने भी 'धर्म' की व्याख्या इसी रूपमें की है। राष्ट्रपिता गाँधीजीने भी 'धर्म' की व्याख्यामें अहिंसा, सत्य, और जितेन्द्रियता पर ही अधिक बल दिया है।

अब यह बात अधिक स्पष्ट रूपसे सामने आ गई, कि हम जिस धर्मकी चर्चा बार-बार करते हैं, वह धर्म क्या है? वह धर्म है अहिंसा, सत्य, धैर्य, शुचिता, जितेन्द्रियता, दम, परोपकार और सदाचार आदि। 'धर्म' इन्हीं गुणोंकी—महान् गुणोंकी समष्टि है। जिस प्रकार सूर्य तेज पुंज 'अंशुओं' की एक समष्टि है, उसी प्रकार 'धर्म' भी सद्गुणों, और पवित्र आचरणोंकी समष्टिका ही एक नाम है। यदि हम 'धर्म' को मानते हैं, या 'धर्म' के पथ पर चलते हैं, तो विविध संप्रदायोंके विश्वासोंके अनुसार विविध रूपोंमें ईश्वरकी उपासना करते हुए भी हमें 'धर्म' के स्थानपर उसके इसी रूपको मानकर चलना होगा। मनुष्यके व्यक्तिगत जीवनसे लेकर उसके सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनकी सफलता तक उसकी 'धर्म-नीति' पर ही आश्रित करती है। मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवनसे लेकर सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन तकमें, धर्मको जिस नीति के अनुसार ग्रहण करता है, उसी

के अनुसार उसे 'सुख', 'शान्ति' और सफलता भी प्राप्त होती है। यदि मनुष्यकी नीति 'धर्म' के प्रति 'सत्यमय' और आस्थापूर्ण होती है तो जीवन-गगन पर चाहे वह व्यक्तिगत हो, चाहे सामाजिक हो, और चाहे राष्ट्रीय हो, उसी तेजवान् सूर्यका उदय होता है, जिस में सभी प्रकारकी तमिस्राओंको छिन्न-भिन्नकर देनेकी अखंड क्षमता होती है। अन्यथा मनुष्य व्यक्तिगत जीवनसे लेकर, समाज और राष्ट्रीयताके क्षेत्र तकमें 'दुखों', निराशाओं और अभावोंके चंगुलोंमें फँस जाता है। इस संबंधमें यहाँ 'मनु' का एक कथन उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा :—

अधर्मप्रभवं चैव दुःख योगे शरीरिणाम्।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुख संयोगमक्षयम्॥

'शरीर धारियोंके सर्व दुःख अधर्मसे होते हैं, और अक्षय सुखोंका संयोग धर्मसे ही होता है।'

यदि हम 'मनु' के इस कथनको सामने रखकर अपने वर्तमान व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनकी समीक्षा करें, तो हमें यही कहना पड़ेगा, कि आज हमारे जीवन-गगन पर, दुःख और दैन्यकी जो काली-काली घटाएँ घिर आई हैं, उनका कारण केवल यही है, कि हमने 'धर्म' से अपना नाता तोड़ लिया है। ज्यों-ज्यों समय बीतता जा रहा है, त्यों-त्यों हम अपना 'धर्म-पथ' छोड़ते ही जा रहे हैं। वेदों, रामायण, महाभारत और गीताकी चेतावनी पर भी हमारी आँखें नहीं खुल रही हैं। आश्चर्य नहीं, धर्मके अभावमें सर्वनाशके देवता को ही हमारी आँखें खोलनेके लिए उपस्थित होना पड़े! धर्मके पथसे भूले हुए लोगों, 'धर्म' गीताका सन्देश लेकर तुम्हारे सामने खड़ा है। आँखें खोलकर 'धर्म' को समझो, और उसके संदेशको वास्तविक रूपमें ग्रहण करो। फिर तो सफलता, सुख और शान्ति तुम्हारा ही वरण करेगी।

क्योंकि सुना नहीं तुमने ? विजय वहीं होती है, जहाँ धर्म होता है।



निर्भयताका विज्ञान

निर्भयता तीन प्रकारकी होती है—जानकार निर्भयता, ईश्वरनिष्ट निर्भयता और विवेकी निर्भयता। जानकार अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकारके भयोंसे परिचय पाकर, उनका इलाज सीख लेनेसे जो निर्भयता आती है, वह। जिसे साँपों की पहचान हो जाये, निर्विष-सविषकी परख हो जाये, काटनेके बादका इलाज मालूम हो जाये, उसमें साँपोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ निर्भयता आ जायगी। यह निर्भयता साँप तक ही रहेगी। लेकिन इससे मनुष्यमें जो साहस आ जाता है, वह उसके हाथसे अस्वाभाविक व्यापार नहीं होने देता। बल्कि उसकी बदौलत साँपोंसे भी मित्रता करनेकी वृत्तिका निर्माण होना संभव है।

दूसरी है ईश्वरनिष्ठ। यह पूर्ण निर्भय करने वाली है, किंतु दीर्घ प्रयत्न, उत्तम पुरुषार्थ और भक्ति इत्यादि साधनोंको सतत आचरणमें लाये बिना यह प्राप्त नहीं होगी। तीसरी विवेकी निर्भयता है।

परम कल्याण-कारिणी भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिका विवेचन

"श्रीकृष्ण भगवान्‌की ही आराधना सर्वोपरि, और सर्वोत्तम है। वे पूर्णावतार हैं। श्रीकृष्ण ही सगुण-निर्गुण, साकार निराकार, सर्व-मय, सर्वातीत, महान् अणु, सर्व शक्तिमान्, सर्वलोक महेश्वर, सर्वान्तर्यामी, और साक्षात् भगवान् हैं।"

परम कल्याणकारी मार्ग

श्रीकृष्णगोपालमाथुर

आत्मकल्याण तथा लोक-हितके लिये संत-महात्माओंने भगवत् आराधनाकी अनेक विधियाँ वेदों, पुराणों, धर्मशास्त्रों, और भागवत तथा महाभारतादि ग्रन्थोंमें स्थान-स्थान पर बताई हैं। उनमेंसे जिस विधिका उपयोग आजके युगके लिए उपयुक्त हो, वही साधन और वही श्रेष्ठ आराधना है।

शास्त्रकारों, धर्माचार्यों, और पंथ-प्रवर्तकोंने विशेष रूपसे भगवद्भक्तिका ही उपदेश दिया है। वास्तवमें कलियुगमें भक्ति ही कल्याणका मार्ग है, जिस पर चलनेसे साधकको, जैसी उसकी इच्छा होती है, फल मिलता है। भक्तिसे मुक्ति जैसी सर्वोत्तम और अमूल्य सिद्धि भी जब मिल जाती है, तब किसी शुभ कामनाका सिद्ध होना आश्चर्यकी बात नहीं है।

किन्तु लक्ष्यको सिद्ध करनेके लिए चित्तसे रजोगुण-तमोगुणके मलको सर्वप्रथम सर्वथा दूर करना होगा। यह भगवद्आश्रयसे ही होता है। सब प्रकारके मल धुलजानेसे चित्त स्वच्छ एवम् निर्विकार हो जाता है। तब कण-कणमें श्री हरिके दर्शन करनेका अभ्यास करना चाहिए। श्रीमद्भागवतके अनुसार,"आकाश, वायु, अग्नि, जल,पृथ्वी, ग्रहनक्षत्रादि, ज्योतिर्मंडल, समस्तप्राणी, दिशाएँ, वृक्षआदिवनस्पति, नदियाँ और समुद्र सभी भगवान्‌के ही शरीर हैं। किसी भी जड़-चेतन पदार्थको श्रीभगवान्‌का स्वरूप समझकर अनन्य भावसे प्रणाम करना चाहिये।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशोद्रुमादीन।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥

मानवजीवन बड़े पुण्योंके पश्चात् प्राप्त होता है। मानव जीवन स्वार्थ साधन नहीं है, विलास नहीं है, भोग नहीं है, सत्ता नहीं है, कीर्त्ति नहीं है। जीवन तो हृदयके अनुभवमें आई हुई सच्ची संवेदना है, अन्तरकी सच्ची अनुभूति है, सच्चा त्याग है, बालकके समान सरलता है,

सत्य है, शिव है, सुन्दर है। इनके विपरीत जो कुछ है, वह मानवके लिए श्वास लेते हुए भी "मृत्यु" है। प्रभुदत्त आत्मा, हृदय और बुद्धिका सदुपयोग ही जीवन है—दुरुपयोग ही मृत्यु है। अतः जीवन जीनेके लिए है, यह सूत्र ध्रुव सत्य है।

पृथ्वी पर पापका भार अधिक वढ़ गया है, और वढ़ता जा रहा है। मानव, मानवका शत्रु वन, उसे मिटाकर अपने ही सुखकी स्थापनाके प्रयत्नमें, मानो संसारमें अमर वनना चाहता है। विज्ञानके आविष्कार जो युगकी प्रगतिके साधन माने जाते हैं, विनाशके यंत्र सृजन कर रहे हैं। इनमें दया-धर्म, मानवसेवा, सहानुभूति, सहायता, त्याग, निःस्वार्थभाव आदि दैवी गुणोंके लिए स्थान कहाँ ? छल कपट, मिलावट, धोखा, झूठ, विश्वासघात, लूटखसोट, हत्या, अपहरण आदि अनीतिके मार्ग निर्भय होकर अपनाये जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप अकाल, वाढ़, सूखा, महामारी, कलह, हिंसा आदि उपद्रव भी हो रहे हैं। कई स्थानोंमें अन्नजलके अभावमें त्राहि-त्राहि मच रही है। भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी—सवको एकसा लाभ पहुँचाने वाली गोमाताकी हत्या निर्दयता पूर्वक हो रही है। इस भयङ्कर सङ्कटके समय हमें आराधना के द्वारा भगवान्‌को पुकारना है—मनकी सच्ची लगनसे, मस्तक उनके चरणोंमें ही झुकाना है। यह निश्चित वात है कि जव तक मानव भगवत्परायणहोकर, धर्म पर आरूढ़ न होगा, तथा धर्माचरण नहीं करेगा, तव तक अन्य किसी भी साधनसे उसका क्लेश कभी दूर न होगा। भगवान् ही मानवके जन्म-जन्मांतरके संचित पापोंका, उसके क्लेश, दुःख, शोक, रोग, चिन्ता एवम् सांसारिक पीड़ाओंका नाश करते हैं। अनन्यभावसे उनकी शरणमें जानेसे ही दुःख दूर हो सकते हैं।

आराधना किस देवता की करनी चाहिये, यह साधककी इच्छापर निर्भर है। भगवान्‌के किसी अवतारकी, सगुण निर्गुण किसीकी भी आराधना रुचिके अनुकूल, अनेक मंत्रोंमेंसे किसी भी मंत्रके द्वाराकी जा सकती है। नाम-मंत्र सबसे सरल है, उसकी महिमा भी अपार है :—

"राम न सकहिं नाम गुण गाना"

किसीकी भी आराधनाकी जाय, सव भगवान्‌को ही प्राप्त होती है। मार्ग अनेक हैं, लक्ष्य-स्थान एक ही है। समुद्र एक ही है, अनेक नदियाँ अनेक मार्गोंसे आकर उसमें गिरती हैं :—

"आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥

सवसे मुख्य वात तो दृढ़ विश्वास, सच्ची लगन, एवम् तन मनसे श्री भगवान्‌के प्रति समर्पण हो जानेकी है।

श्रीकृष्ण भगवान्‌की ही आराधना सर्वोपरि और सर्वोत्तम है। वे पूर्णावतार हैं। श्रीकृष्णही सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, सर्वमय, सर्वातीत, महान् अणु, शक्तिमान्, सर्व-लोक महेश्वर, सर्वान्तर्यामी और साक्षात् भगवान् हैं—

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"

"भगवान् श्रीकृष्णका विग्रह उपासकोंके ध्यान धारणाका मंगलमय आधार और सफल लोकोंके लिए परम रमणीय आश्रय है। इसलिये उन्होंने योगियोंके समान अग्निदेवता सम्बन्धी योग धारणाके द्वारा उसे गलाया नहीं, और स-शरीर ही अपने धामको चले गये।"

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यान मंगलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥

श्रीकृष्णका अवतार भू-भार उतारनेके लिए होता है। उन्होंने स्वयम् श्रीमद्गीतामें कहा है :—

यदायदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

"हे भारत ! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तबमैं अपने रूप को रचता हूँ—प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषोंका उद्धार करने एवम् दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करने तथा धर्मके स्थापन के लिए युग-युगमें प्रकट होता हूँ।"

गवल्गण नामक सूतके पुत्र, जो मुनियोंके समान ज्ञानी और धर्मात्मा थे, धृतराष्ट्रके मंत्री थे। व्यासजीकी कृपासे इन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी। उन्होंने अपने ज्ञानका मंथन कर, महाभारत युद्धका निचोड़ नवनीतके रूपमें श्रीमद्भगवतगीताके अन्तमें स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया है :—

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

"जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् हैं और जहाँ गांडीव धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है। ऐसा मेरा मत है।"

आइये, हम सब मिलकर विश्वके समस्त उपद्रवोंको मिटानेके लिए भगवान् श्रीकृष्ण की शरणमें चलें और निष्कपट भावसे, एकाग्र मनके साथ, भक्ति पूर्वक अहर्निश उनके स्मरण तथा पूजन-भजन की प्रतिज्ञा करें।



व्रतधारी राम

'प्रिय बंधु सुग्रीव ! राजओंके निवास योग्य नगर मेरे जैसे व्रतधारियोंके लिए योग्य नहीं है और यदि मैं वहाँ जाऊँ तो मेरी सेवामें ही तुम्हारा सारा समय लग जायगा। तुम विचार किये जाने योग्य शासन कार्यसे स्खलित हो जाओगे। चिरंजीव ! मैंने यह प्रण किया है कि चौदह वर्ष वनमें रहूँगा। अतः इस अवधिमें मैं राजाओंके निवासमें नहीं ठहरूँगा। वहाँ रहकर भी, मेरी प्राण प्रिया जीवन संगिनीके बिना क्या मैं सुख भोग सकूँगा ?—यह तुमने कदाचित सोचा नहीं। तात, यह अपयश क्या त्रिभुवनके विनाश होने पर भी मिट सकेगा, कि राक्षसके द्वारा अपनी पत्नीके बंदी बनाकर रक्खे जाने पर भी राम स्वयं अपने मित्रों सहित अपार सुखोंका उपभोग करता रहा।' [तामिलके कंब रामायणसे]

"उसकी सम्पूर्ण श्री सभीके लिये है, उसकी सम्पूर्ण स्रष्टि सभीके लिये है। इतना ही नहीं, वह स्वयं भी सभीके लिये है। वह विश्वके मंगलका विधान करता है, अमंगलका निवारण करता है।"

वह अनोखा दाता है

श्रीराधेश्याम बंका एम. ए.

सूर्य अपना प्रकाश देता है, अपनी उष्णता देता है और देता है सभीको। सूर्यकी दृष्टि में भेद नहीं। जलको- स्थलको, जड़को-चेतनको, पूर्वको-पश्चिमको, मूर्खको-पण्डितको, सभीको समान रूपसे अपना प्रकाश और अपनी उष्णता दे रहा है, न जाने कबसे दे रहा है और न जाने कब तक देता रहेगा। उसका दान सभीके लिये उन्मुक्त है। कोई शर्त नहीं, कोई मूल्य नहीं। जो लेना चाहे, ले; जितना लेना चाहे, ले। सूर्यकी ओरसे कोई प्रतिबन्ध नहीं। यह हम पर है कि उसके प्रकाशको स्वीकार करनेके लिये हमारे द्वार खुले हैं अथवा बन्द। उसकी उष्णतासे हम लाभ उठाते हैं अथवा नहीं।

लहलहाती और महमहाती वाटिकाका सौन्दर्य और सौरभ किसके मनको नहीं मोह लेता? खिले पुष्पोंने वाटिकाको सौन्दर्य और सौरभसे आपूर्ण कर दिया। जो भी वाटिकामें आया, जो भी पुष्पोंके समीप खड़ा हुआ, उसे देखने और सूँघनेका सुख मिला। हर एक देखे, हर एक सूँघे। वाटिकाके सौन्दर्य और सौरभपर कोई प्रतिबन्ध नहीं। कोई भी आकर देख सकता है, सूँघ सकता है, जितनी देर चाहो, देखो और सूँघो, पर न कभी पुष्प मना करते हैं और न कभी वाटिका रोकती है। अब यह हम पर है कि वाटिकाके पुष्पोंके सौन्दर्यका-सौरभका दान स्वीकार करते हैं अथवा नहीं।

हमारी तुम्हारी स्वीकृतिसे निरपेक्ष होकर सूर्य अपना सर्वस्व दे रहा है, वाटिका अपना सर्वस्व दे रही है। जिस प्रकार सूर्य और वाटिका उसकी सृष्टि है, उसी प्रकार चाँद-सितारे, सरिता-सागर, वन-उपवन, सभी सृष्टि उसीकी है और सम्पूर्ण सृष्टिका दान निरपेक्ष है, निरन्तर है। सभी दाता हैं। वैसे ही दाता हैं, जैसा दाता है इनको सृष्ट करनेवाला। जैसा स्रष्टा, वैसी सृष्टि।

स्रष्टाने सूर्य और चन्द्रमाकी, वन और वाटिकाकी, सरिता और सागरकी सृष्टिकी। मानव-मात्रके लिये सूर्यकी सम्पत्ति है, चंदाकी चाँदनी है, वनकी वनस्पति है, वाटिकाका वैभव

है, सरिताका जल है, सागरका भाण्डार है। कोई भेदभाव नहीं। कोई छोटा-बड़ा नहीं। आस्तिक-नास्तिकका कोई अन्तर नहीं। उसकी सम्पूर्ण श्री सभीके लिये है, उसकी सम्पूर्ण सृष्टि सभीके लिये है। इतना ही नहीं, वह स्वयं भी सभीके लिये है। वह विश्वके मंगलका विधान करता है,अमंगलका निवारण करता है। उसे सभी मानव प्यारे हैं, उसके अपने हैं, उसके अंश हैं। उसका प्रत्येक कार्य विश्वमंगलकी भावनासे प्रेरित है और विश्वमंगलमें प्रतिफलित होता है।

हम जाने अथवा न जाने, जानकर भी माने अथवा न माने। एक है जो जाननेवालेको भी देता है और नहीं जाननेवालेको भी देता है, माननेवाले को भी देता है और नहीं माननेवालेको भी देता है। जो उसकी स्तुति करते हैं, उनको वह प्यार करता है और जो गाली देते हैं, उनको भी प्यार करता है। उसका अस्तित्व तुम स्वीकार करो तो, इंकार करो तो, तुम कुछ भी करो, वह तुमको देता ही रहता है। देता ही देता है— वह दे रहा है और देता रहेगा। उसका देना हमारी-तुम्हारी मान्यता पर निर्भर नहीं है। उसका दान हमारे-तुम्हारे ज्ञान-अज्ञान सापेक्ष नहीं है। वह अनोखा दाता है, जो अनन्त कालसे सभीको सब कुछ देता चला आ रहा है और अनन्त काल तक अनवरत देता रहेगा।

—:※:—

सुकवि रसखान

ब्रज बन बीथिन में लोटि ब्रजभारतीमें—
रज जस गायौ है सुतजि कुल कान कों।
रस-रसखानहिं अराध्यौ रचिपचि ध्यायौ,
मनसों मनायौ नंद-जसुदा के प्रान कों।
मोर पँखियाँन पै सुह्र ह्वैकें कुरबान कवि—
रंजन सराह्यौ रसमय बतियाँन कों।
सुकवि महान कों सुजानकों पठानि कों सु—
धनि पुनि धनि है रसिक रसखान कों ॥१॥

रास रसेस ब्रजेस की कीरति, चित्तहिं लाय सप्रेम बखानी।
साह की संक न नेंकु करी, ब्रजधाम की पावनता अनुमानी।
रंजन मान गुमान मयी इतरानी समानी सनेह सों सानी।
भाव प्रभाव भरी रस सों मन मानी बड़ी रसखान की बानी ॥२॥

ब्रज कानन गाय चरामन हार गुपालहिं गाय रिझाय गयौ।
नव नेह की नीत निभाय गयौ अरु प्रीत की रीत बताय गयौ।
मिठलौने अमोलन बोलन में ब्रजकी चरचा बतराय गयौ।
कवि रंजन चित्तहिं भाय गयौ रसिया रसखान कहाय गयौ ॥३॥

इसलाम निलाम कियौ हरि पै, ब्रज की रज पै तिहुं लोक विहायौ।
रसखान पठानि सुजान जहान में भक्त-सिरोमनि को पद पायौ।
सुचि भक्ति सुधारस प्यायौ सबै कवि रंजन स्याम के रंग नहायौ।
प्रभु के पद पद्मपरागहि में मन पाग कें प्रेम के राग कों गायौ ॥८॥

राजेन्द्र रंजन एम० ए०

विश्वास और भक्तिपूर्ण प्राणोंके उद्गार

"जैसे अलग-अलग पड़ा है, तो सूत है, पर उसे ठीकसे ताना-बाना बनाकर बुन देनेसे 'वस्त्र' है, उसी प्रकार अलग-अलग घटमें वह आत्मा है, पर एकत्र करते ही अर्थात् एकात्म भाव का अनुभव करते ही वह परमात्मा है। पंच ही परमेश्वर है, दरिद्र नारायणकी सेवा ही ईश्वरकी सेवा है।"

ईश स्मरण--चिरकल्याणका स्रोत

श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद मिश्र

ईश-आराधनासे जीवन सार्थक हो जाता है। यह जिज्ञासा स्वाभाविक पैदा हो सकती है कि आराधना कैसेकी जाय इसका उत्तर कौन दे ? एक कहावत है कि घीका लड्डू टेढ़ा भी भला। चाहे जैसे भी ईश-स्मरण किया जाय, वह मंगलकारी ही है।

एक आख्यायिका मैंने बचपनमें सुनी थी। एक राजा था और एक रानी थी। रानी बड़ी ईश्वर भक्त थी। वह सदा हरि स्मरणमें मग्न रहती, पर राजा कभी भूलकर भी ईश्वरका नाम न लेता। रानीको बड़ा दु:ख था कि उसका पति कभी राम-नाम नहीं लेता। वह राजासे इसके लिए अनुरोध भी करती, पर वह कुछ उत्तर न देता। ऐसे ही बहुत दिनों तक चलता रहा। एक दिन बाजे-गाजेकी ध्वनि सुनकर राजाकी नींद खुली। उसने देखाकि राजमहलमें भारी उत्सव मनाया जा रहा है और रानी अत्यन्त प्रसन्न है। राजाने रानीसे इसका कारण पूछा। रानीने बताया कि मेरी हार्दिक कामना थी कि आपके मुँहसे रामका नाम सुनती। वह कामना आज पूरी हुई है। आज रातमें नींदमें आपने रामका नाम लिया था, अतः उसीके उपलक्ष्यमें यह उत्सव मनाया जा रहा है। इतना सुनना था कि राजा गम्भीर हो गया। उसने कहा, कि जब इस शरीरसे 'राम' ही निकल गया, तब यह शरीर रखनेसे क्या लाभ है। उसने तुरन्त शरीर त्याग दिया। अब रानी की समझमें आया कि राजाकी ईशाराधना कितनी गहरी थी। वह मूक आराधना थी।

सुनते हैं, पहले भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए हजारों वर्षकी कठोर तपस्या करनी पड़ती थी। तब भी राम मिल ही जायेंगे, यह निश्चित नहीं था। कई-कई ऋषि-मुनियोंको तो ईश्वरके साक्षात्कारके लिए कई-कई जन्मों तक तपस्या करनी पड़ी। पर यह तबकी बात थी, जब पृथ्वी पर धर्मका ही प्रभुत्व था और चतुर्दिक महात्मा—धर्मात्मा लोग ही वास करते थे।

चारों ओर धर्मका अनुशासन बहुत कड़ा था। भगवान्के चाहनेवाले बहुत थे, अतः उनका भाव भी ऊँचा था। हम पापियोंके लिए तो, इस कलियुगमें, भगवान्की प्राप्ति सरलतासे हो जानेका विधान है। कहते हैं, महापापी अजामिलने मरते समय अपने पुत्र नारायणको पुकारा, पर उसके वदले साक्षात् नारायण उसके सामने खड़े हो गये। यही बात गणिकाके साथ भी हुई। वह तो अपने तोतेको राम कहना सिखला रही थी, उधर भोले-भाले रामने समझाकि वह मुझे ही पुकार रही है। गणिकाके भाग्य जाग गये। उसकी मुक्तिके द्वार खुल गये।

भगवान धोखेमें मिलेंगे या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर इतनातो अवश्य कहा जा सकता है कि यदि हृदयसे भगवान्को पुकारा जाय तो भगवान्का वरद हस्त सिर पर अवश्य रख्या कर देगा। गजने आर्त होकर भगवान्को पुकारा तो वे वैकुण्ठ छोड़कर गरुड़पर सवार होकर उसके उद्धारके लिए दौड़े आये। अव तो कलियुगमें घुणाक्षर न्याय भी प्रयुक्त हो गया है। कहते हैं कि यदि लकड़ी खानेवाले दीमकसे अनजानमें भी राम जैसा लिख जाय, तो उसकी मुक्ति हो जाती है। अनजानेमें 'राम' कहनेका जव इतना लाभ है, तो समझ बूझकर उसका स्मरण करनेसे तो अवश्य ही लाभ होना चाहिए।

यदि मनुष्य सर्वात्मभावसे अपनेको भगवान्के समर्पण कर दे तो उसका कल्याण ही कल्याण है। सुखमें, दुःखमें, हर्षमें, विषादमें, हर दशामें यदि भगवान्की स्मृति बनी रहे तो मनुष्यको दुःख हो ही नहीं। कहते हैं :—

दुखमें सुमिरन सब करें, सुखमें करे न कोय।
जो सुखमें सुमिरन करे, तो दुख काहे कों होय॥

भगवान्का ही विधान मंगलमय है, यदि यह विश्वास दृढ़ हो जाय तो मनुष्यको कोई भय न रहे। यदि उसे यह विश्वास वना रहे कि भगवान् सदा हमारी रक्षा करता है, तो वह सदा सुरक्षित रहे—

रन, वन, व्याधि, विपत्तिमें, वृथा डरो जनि कोय।
जो रक्षक जननी-जठर सोहरि गयो न सोय॥

भगवान् सर्वान्तिर्यामी हैं। वे भावके भूखे हैं। यदि सच्चे मनसे उनकी पुकारकी जाय तो वह नंगे पाँव दौड़े आते हैं। उनके रीझनेके ढङ्ग अनूठे हैं, उनके मिलनेके स्थान अनन्त हैं। भगवान् भी कभी-कभी कैसे रीझते हैं? एक सुन्दर कहानी है। एक सज्जन ठाकुरजीके अनन्य भक्त थे। ठाकुरजीकी नियमित पूजा करते और उन्हें भोग लगाकर ही भोजन करते। एक दिन उन्हें कार्यवश वाहर जाना पड़ा। जाते-जाते उन्होंने अपने अल्पवयस्क पुत्रको यह समझा दिया कि वह ठाकुरजीकी पूजा-अर्चना करके उन्हें भोग लगाकर ही भोजन करे। भोले-भाले वालकने वैसा ही किया, पर जव उसने ठाकुरजीको भोग लगाया तो भोजनका थाल ज्योंका त्यों पड़ा रहा। वालककी कल्पना थी कि जैसे वह स्वयं भोजन करता है, वैसे ही ठाकुरजी भी भोजन करते होंगे, अन्यथा यह थाल परोसकर रखनेसे क्या लाभ? उसने समझाकि भोजन में कुछ कमी है, और जैसे वह मातासे रूठता है, वैसे ही वे भी रूठ गये हैं। उसने उनसे बहुत अनुनय-विनयकी, पर ठाकुरजी इससे राजी नहीं हुए। अन्तमें वालक झल्ला उठा। वचपनमें

भोजन न करने पर जैसे उसकी माँ छड़ीके सहारे उसे भोजन करनेके लिए विवश करती है, उसी तरह उसने भी एक छड़ी लेकर ठाकुरजीको भोजन करने का आदेश दिया। इतने पर भी जब ठाकुरजी नहीं डोले तो बालकने छड़ीसे उनकी पिटाई आरम्भ कर दी। कहते हैं कि ठाकुरजीने थाल खींचकर भोजन कर लिया। दूसरे दिन जब उसके पिताजी पूजा करने गये तब मूर्ति पर छड़ीके निशान दिखायी पड़े। जब पुत्रसे उसके सम्बन्धमें पूछा तो पुत्रने सारी बात बता दी। उसने यह भी बता दिया कि पिटाई करने पर ठाकुरजीने भोजन किया। पितामह सब सुनकर अवाक् हो रहे। गद्‌गद् होकर उन्होंने पुत्रको हृदयसे लगा लिया।

वस्तुतः यह बालकका प्रेम भाव ही था, जिससे विभोर होकर ठाकुरजीने भोजन कर लिया था। उन्होंने छड़ीकी मार नहीं, बालकके भावको देखा था। इसीसे कहते हैं कि भगवान् भावके भूखे रहते हैं।

बहुतसे लोग कहते हैं कि भगवान् तो क्षीर सागरमें हैं। यदि हम अपने घरमें उनका स्मरण करें तो क्या हमें उनकी प्राप्ति हो सकती है? ऐसे लोगोंसे क्या कहा जाय? बेतारके तारके युग में भी ऐसी बातों की क्या तुक है? यदि रसगुल्लेका नाम लेने पर जीभ पर रसगुल्ले का स्वाद आकर, लार टपक सकती है, नीबू या इमलीका स्मरण होते ही जीभमें खट्टेपनका आभास हो सकता है तो भगवान्‌का नाम लेने पर उसके ईश्वरत्वका रसास्वादन हम क्यों नहीं कर सकते? अन्य अनेक प्रकारकी शंका कुशंकाएँ भी उठायी जाती हैं और उठायी जा सकती हैं, पर यहाँ तर्कोंके उत्तर देनेके लिए मैं नहीं बैठा हूँ। सच्ची बात तो यह है कि 'विश्वास' फल-दायकम्।' मानो तो देव, नहीं तो पत्थर'। देव मानो तो देवका फल, पत्थर मानों तो पत्थर का फल। वह तो कल्पवृक्ष है। जैसी नीयत, वैसी बरकत है। पर इस सबके होते हुये भी वह परम दयालु एवं वत्सल है और हमारे ऊपर सदा अपना वरद हस्त रखता है। हम कुपुत्र हो सकते हैं, पर वह कुपिता नहीं बन सकता।

कहनेका तात्पर्य कि चाहे जैसे भी हो भगवान्‌का स्मरण किया जाय, उसकी आराधना की जाय, तो उसका फल सदा मङ्गलमय ही है। उसे खोजनेकी भी आवश्यकता नहीं है। 'वह तो सदा तेरे पासमें' ही है, अन्तर्वासी है, घटघटवासी है। इसीसे कहते हैं कि :—

या जगतीमें आयकें सबसों मिलिये धाय।
क्या जाने केहि भेषमें, नारायण मिलि जाय॥

जैसे अलग-अलग पड़ा है तो सूत है, पर उसे ठीकसे ताना-बाना बनाकर बुन देने से सुन्दर वस्त्र है, उसी तरह अलग-अलग घटमें वह आत्मा है, पर एकत्र करते ही, अर्थात् एकात्म भावका अनुभव करते ही, वह परमात्मा है। पंच ही परमेश्वर है। दरिद्रनारायणकी सेवा ही ईश्वरकी सेवा है, क्योंकि सबमें उसीका निवास है। यदि ईश्वरको खोजना ही है तो अपनेमें खोजो और यदि बाहर खोजना है तो घट-घटमें देखो फिर तो हममें, तुममें, खड्ग-खम्भमें सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर है। यह समझकर अपनेको समाजको अर्पित कर दिया जाय और उसीकी सेवाका व्रत लिया जाय तो आजके युगमें यही एक बड़ी आराधना है। ऐसी आराधना, जो कभी विफल नहीं हो सकती।



"प्रायः लोग श्रीबिहारीजीके मन्दिरमें मनौतियाँ कर जाते हैं। भक्तों और प्रेमियोंका यही कहना है कि श्रीविहारीजीके दर्शनसे प्रत्यक्ष सुखद फल प्राप्त होता है।"

परम आराध्य, श्रीविहारीजी

स्वामी श्रीजयरामदेवजी

श्रीवृन्दावनके परम पूज्य महात्मा, स्वामी हरिदासजी महाराज विश्व-विख्यात हो चुके हैं। सुप्रसिद्ध संगीताचार्य तानसेनके आप गुरु थे। आपका गन्धर्वोंके सदृश, विलक्षण सिद्धि-पूर्ण गान होता था। आप महान् त्यागी और परम तपस्वी थे। आपका जन्म श्री वृन्दावनके समीप, विप्रवंशमें वि० सम्वत् १५३४में भाद्र शु० ८ को हुआ था। बाल्यावस्थामें ही आपको जगत्‌से विरक्ति हो गई थी। आप अखण्ड ब्रह्मचर्य धारणकर, तपमें स्थित, वृन्दावनके मध्यमें निवास करते थे, और श्रीराधा-कृष्णके दर्शनार्थदिन-रात साधनामें लीन रहते थे। आप प्रति दिन तीन मुट्ठी चने खाकर, निधि वनमें तपस्यामें रत रहते थे। आपको श्रीराधा-कृष्णका साक्षात्कार हुआ था। प्रसिद्ध है कि भगवान् साक्षात् प्रगट होकर आपके द्वारा संगीत सुना करते थे।

आपके दर्शनार्थ बड़े-बड़े नृपति प्रतिदिन आया करते थे। किन्तु आप एक गुदड़ी ओढ़े हुए, लताओंकी झोपड़ीमें रहते थे। हाथमें मिट्टीका एक करवा पात्र रखते थे। कठोर तप-श्चर्यामें संलग्न रहना ही आपको प्रिय था। आपमें बहुतसे अलौकिक चमत्कार भी देखे गए थे। आपके सैकड़ों शिष्य हुए हैं, जिनका सुयश भक्तमाल आदि ग्रन्थोंमें स्तुत्य अक्षरोंमें वर्णित है।

एकबार एक हरि-भक्त श्री हरिदासजी महाराजके पास उनका शिष्य होनेके लिए गए। उनके पास एक पारस पत्थर था, जिससे वे प्रतिदिन सोना बनाया करते थे। उन्होंने वह पारस श्री हरिदासजी महाराजको भेंटमें देकर, उनसे दीक्षाके लिए प्रार्थनाकी। आपने उस पारसको देखकर कहा—"इस पारससे बहुत सा सोना बनाकर सांसारिक भोगोंका उपभोग किया जा सकता है, किन्तु साधुके लिए तो वे भोग नरकमें ले जानेवाले हैं। अतः इस पारस को हम भयंकर विषधर सर्पके समान मानते हैं। यदि तुम मुझसे मोक्ष-मार्गकी दीक्षा चाहते हो तो इसे अभी यमुनाजीमें फेंक दो।"

भक्तने उनकी आज्ञा मानकर, उस अनमोल पारसको यमुनाके अगाध जलमें फेंक दिया। फिर वह स्वामीजीसे दीक्षित होकर वृन्दावनमें रहकर भगवान्‌की साधना करने लगा। कहा जाता है कि उस पर स्वामी हरिदासजीकी बड़ी अनुकम्पा थी।

श्री स्वामीजी नित्यप्रति निधिवनमें, एक स्थानमें जाकर प्रणाम किया करते थे। एक दिन उनके शिष्योंने उनसे पूछा—"महाराज, आप प्रतिदिन यहाँ किसे प्रणाम करते हैं ?" श्री स्वामीजीने अपने शिष्य विट्ठलविपुलजीकी ओर देखकर लताओंके सघन-कुंजकी ओर संकेत किया। श्री विट्ठलविपुलजीने देखा कि लताओंमें श्रीराधा-कृष्ण खेल रहे हैं। उनकी मनोभिलापा हुई, कि वे दौड़कर चरण स्पर्श करें। आगे बढ़े तो श्रीराधाजी श्रीकृष्णके अङ्गमें समाविष्ट हो गईं। अकेले श्रीकृष्ण भगवान् खड़े रह गए। वे आनन्द-विह्वल होकर आगे बढ़ते गए और भगवान्के पास पहुँचकर भगवान्के चरण पकड़ लिए। वे आँखोंमें अश्रु भर भगवान् से प्रार्थना करने लगे—'प्रभो, । अब मैं आपको जाने न दूंगा। आपसे मैं यही वरदान माँगता हूँ, कि आप प्रत्यक्ष रूपसे, विराजमान होकर हम-सबकी सेवा स्वीकार करें।'

भगवान्ने उत्तर में कहा—"ऐसा ही होगा। हम मूर्ति रूपमें हो जाते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष हम तुम-सबकी सेवाको स्वीकार करेंगे।"

बस, भगवान् मूर्ति रूपमें हो गए। वही मूर्तिरूप भगवान् हमारे परम आराध्य श्रीविहारीजी हैं। श्रीविट्ठलविपुलजी विहारीजीको गोदमें उठाकर श्री हरिदासजीके समीप ले गए। स्वामीजीकी आज्ञासे, वहीं छोटासा मन्दिर बनाकर सेवा-पूजा आरम्भ करदी गई। कहा जाता है, कि यह घटना वि० १५८० मार्गशीर्ष शु० ५ की है। आजभी प्रतिवर्ष इसी दिन 'विहार पंचमी'के नामसे विहारीजीके मन्दिरमें बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

श्रीहरिदासजी सदैव ध्यानमें मग्न रहा करते थे। एकबार होलीके अवसर पर, पंजाबके एक भक्त वृन्दावन पधारे। उन्होंने श्रीहरिदास महाराजजीके सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी अलौकिक बातें सुनी थीं। उन्होंने यह भी सुना था कि स्वामीजीने ही अपनी भक्तिसे विहारीजीको प्रकट किया है। सहस्रों भक्तों और प्रेमियोंको, उन्हींकी कृपासे विहारीजीकी मनोहर मूर्तिका अलभ्य दर्शनका आनंद और सौभाग्य भी प्राप्त होता है। अतः वे विहारीजीकी सेवाके लिए, सहस्रों रुपए खर्च करके अपने साथ इत्र ले आए थे। उनकी इच्छा थी कि पूरे वर्ष भर, उनके ही इत्रका विहारीजीकी सेवामें उपयोग होता रहे।

जिस समय वे हरिदासजी महाराजके दर्शनार्थ उनके समीप गए, और उन्होंने उन्हें प्रणाम करके इत्र समर्पित किया, उस समय श्रीहरिदासजी महाराज एकांतमें, यमुनाजीकी रेती पर, शांत चित्त आँखें खोले बैठे थे, और ध्यानमें देख रहे थे कि श्रीराधा-कृष्ण होली खेल रहे हैं। गोपियाँ गुलाल और पिचकारियाँ चला रही हैं। श्रीराधाजी भी, रंग भर-भर कर, पिचकारी चला रही हैं। स्वामी हरिदासजीने ध्यानमें डूबे ही डूबे रंगके पात्रमें, इत्रकी शीशी उठाकर उलट दी। श्रीराधाजीने वही इत्र मिश्रित रंग पिचकारीमें भरकर श्रीविहारीजीके ऊपर डाल दिया।

इधर अपने इत्रको रेतीमें व्यर्थ गिरते देखकर उन भक्त महोदयको बड़ा दुख हुआ। स्वामी हरिदासजीसे उनके मनका यह भाव छिपा न रहा। अतः उन्होंने आज्ञादी—"जाइए, श्रीविहारीजीका दर्शन कर आइए।"

जब वे दर्शन करने गए तो विहारीजीका मंदिर खुलने वाला था। पुजारीने जब मंदिर खोला तो मन्दिरमें इत्रकी सुगन्ध भरी हुई थी। विहारीजी के पीताम्बरपर इत्र ऐसा लग रहा था, मानों किसीने पिचकारी मारी हो। पीतांबर भीगा हुआ था।

चारों ओर इत्र टपक रहा था। यह वही इत्र था, जिसे स्वामी हरिदासजीने रेतीमें उँडेला था। यह दृश्य देखकर भक्त महोदय आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे। उन्हें आश्चर्यभी हुआ कि वह इत्र विहारीजीके ऊपर कैसे आ गिरा ? क्योंकि वह तो यमुनाजीकी रेतीमें उँडेला गया था। आखिर श्रीमहाराज स्वामीहरिदासजीकी कृपासे उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ, कि भगवान् के प्रति जो कुछ वस्तु जहाँ कहीं भी अर्पितकी जाती है, वह प्रभुको अवश्य प्राप्त होती है।

श्रीहरिदासजी महाराजने अपने शिष्य श्रीविट्ठल विपुलजीको श्रीविहारीजीको सेवा करनेकी आज्ञा दी थी। उनके पश्चात् उनके शिष्य श्रीविहारीदेवजी सेवामें रत हुए। किन्तु उनसे सेवा न सँभली। तदनन्तर गोस्वामी गण सेवा करने लगे। श्रीविहारीजीका वर्तमान विशाल मन्दिर, गोस्वामीगणोंके प्रयत्नसे बना है। कहा जाता है, कि मन्दिरका निर्माण अठारहवीं शताब्दीमें हुआ था।

श्रीविहारीजीके मन्दिरमें, बार-बार पर्दा उठाने और गिरानेकी प्रथा है। इसका एक विशेष कारण है। कहा जाता है. कि एकवार एक परम-भक्ता सुगृहिणी विहारीजीके दर्शनार्थ उनके मन्दिरमें उपस्थित हुई। विहारीजीके दर्शनसे उनका प्रेम इतना बढ़ा, कि वे घण्टों टकटकी लगाकर खड़ी रहतीं। उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रु-प्रवाह भी टपकता रहता था। श्रीविहारीजी भी उनकी भक्तिपर विमुग्ध हो उठे। वे जब वृन्दावनसे जाने लगीं, तो श्रीविहारीजी भी, मन्दिरसे निकलकर, उनके पीछे-पीछे चल पड़े। पुजारीगण चिंतित हो उठे। वे भगवान्से प्रार्थना करने लगे—"प्रभो, हमें छोड़कर न जाइए।"

पुजारियोंकी दीन प्रार्थनापर आखिर विहारीजीको रुकना ही पड़ा। वे पुनः मन्दिरमें लौट आए। बस, उसी दिनसे श्रीविहारीजीके दर्शनपर समयका प्रतिबन्ध लगा दिया गया। निश्चय हुआ, कि थोड़ी-थोड़ी देर पर पर्दा उठाया और गिराया जाय, जिससे कोई भक्त या प्रेमी अधिक देरतक श्रीविहारीजीको टकटकी लगाकर न देख सके।

आजकल भी श्रीविहारीजीके चमत्कार प्रत्यक्ष देखे और सुने जाते हैं। एक आर्यसमाजी थे, जो बराबर मूर्ति पूजाका खण्डन किया करते थे। वे वृन्दावनमें आए, और गुरुकुलके एक अध्यापकके साथ, आलोचनाकी दृष्टिसे श्रीविहारीजीके मन्दिरमें उपस्थित हुए। किन्तु उन्हें उस समय महान् आश्चर्य हुआ, जब विहारीजीके सम्मुख पहुँचते ही अपने आप उनका मस्तक नत हो गया। वे किसी मूर्तिके सम्मुख विनत नहीं होते थे। उनके मित्र अध्यापकने जब उनसे इसका कारण पूछा, तो उन्होंने विस्मयके साथ उत्तरदिया, श्रीविहारीजीकी मूर्तिके सम्मुख पहुँचतेही उन्हें न जाने क्या हो गया, कि उनका मस्तक अपने आप ही झुक गया। तत्पश्चात् वे श्रीविहारी जीके प्रति इतने आकर्षित हुए. कि अपने पुराने विचारोंको छोड़कर, श्रीविहारीजीके परम भक्त बन गए।

एक बार मन्दिरमें पुजारियोंने भोगमें कुछ त्रुटि कर दी। श्रीविहारीजीने उस दिन अपनी अलौकिक लीला प्रकटकी। वे रातमें मौजी हलवाईकी दुकानपर, एक बालकके रूपमें पहुँचे और उससे लड्डू लेकर खाये। जब हलवाई ने पैसेकी माँगकी, तो अपने हाथसे सोनेका कड़ा उतारकर दे दिया, और कहा—"इसे बंधक रखलो।" हलवाईको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा, यह छोटा सा अति सुन्दर बालक थोड़ेसे लड्डुओंके लिए अपना बहुमूल्य कड़ा

क्यों दे रहा है ? हलवाईको असमंजसमें पड़ा देखकर बालक रूप श्रीविहारीजी हलवाईके सामने अपना सोनेका कड़ा फेंककर भाग खड़े हुए। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया, तो श्रीविहारी जीके हाथमें सोनेका कड़ा नहीं था। बड़ी खोजकी गई। आखिर मौजी हलवाईके द्वारा यह भेद खुला, कि रातको सरकार लड्डू खाने आये थे, और स्वयं अपना कड़ा देकर चलते बने थे। बस, उसी दिनसे भोगमें सावधानी बरती जाने लगी।

मारवाड़के एक सेठ जो अब श्रीविहारीजीके अनन्य भक्त हैं, जब वृन्दावन आये थे, तो धनाभावके कारण बड़े चिन्तित थे। उन्होंने श्रीविहारीजीसे प्रार्थनाकी—"यदि उन्हें धन प्राप्त हो तो वे उनकी सेवा तन, मन, धनसे करेंगे।" श्रीविहारीजीने उनकी प्रार्थना सुन ली। उन्हें उसी समयसे यथेष्ट धनकी प्राप्ति होने लगी। उनका व्यापार दिनों दिन बढ़ने लगा। बस, वे भी उसी समयसे श्रीविहारीजीकी सेवामें रत हो गए। वे उसी समयसे वृन्दावन में रहते हैं और विहारीजीकी सेवा करते हैं।

श्रीविहारीजीके इस प्रकारके अलौकिक चमत्कार प्रायः देखने को मिलते हैं। एकबार एक अहंकारी व्यक्ति बाजारसे मिठाई खरीदकर, श्रीविहारीजीको भोग लगानेके लिए चला। लोगोंने आश्चर्यके साथ देखा, कि जब वह मन्दिरकी डचोढ़ी लांघ रहा था, तो किसीने उसके हाथका दोना छीनकर बाहर फेंक दिया। दोना छीनकर फेंकनेवाले वह श्रीविहारीजी ही थे। अहंकारमें भरे हुए उस नैवेद्यको स्वीकार करनेको कौन कहे, उन्होंने उसे अपने मन्दिरके भीतर भी न जाने दिया।

एकबार एक भक्तने किसी धनी आदमीसे कुछ रुपये ऋण लिए थे। कुछ दिनोंके पश्चात् उसने रुपए लौटाल दिए। पर उस धनी व्यक्तिने भरपाईकी रसीद न दी। जब कई मास बीत गए, तो धनी व्यक्तिने भक्तपर नालिश कर दी। भक्तने अदालतमें उपस्थित होकर निवेदन किया, कि उन्होंने रुपए लौटाल दिए हैं। अदालतने जब गवाह उपस्थित करनेका प्रश्न उठाया, तो भक्तने निवेदन किया, कि उनका गवाह श्रीविहारीजीको छोड़कर और कोई नहीं है। जजने आदेश दिया, कि तो फिर श्रीविहारीजीको ही उपस्थित करो।

भक्त श्रीविहारीजीके मन्दिरमें पहुँचा, और मूर्तिके समक्ष खड़ा होकर बिलख-बिलख कर रोने लगा। श्रीविहारीजी सकरुण हो उठे। उन्होंने उसी दिन रातमें स्वप्नमें, भक्तको दर्शन दिया, और कहा, वह दुखी न हो। वे न्यायालयमें उपस्थित होकर उसकी ओरसे गवाही देंगे। भक्तका हृदय गद्गद् हो उठा। निश्चित तिथि पर मुकदमा पेश हुआ, और जब श्रीविहारीजीकी पुकार हुई, तो वे गवाही देनेके लिए, विचित्र वेशमें न्यायालयमें जा पहुँचे। उन्होंने जजके सामने गवाही दी, और जब बाहर निकले, तो तत्क्षण अदृश्य हो गए। जजको जब यह घटना मालूम हुई, तो उनका मन भी श्रीविहारीजीकी भक्तिके रँगमें रँग गया। उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे नौकरी छोड़कर श्रीविहारीजीकी साधनामें लग गए।

एक ज़मींदार जो मथुराके एक निकटवर्ती ग्रामके हैं, बड़े दुखी थे। उनका कई वर्षों से एक मुकदमा चल रहा था। वे प्रायः वृन्दावनमें श्रीविहारीजीके मन्दिरमें जाकर प्रार्थना किया करते—"यदि मैं मुकदमा जीत जाऊँगा, तो सौ रुपये का भोग चढ़ाऊँगा।" श्रीविहारी जीने उनकी भी प्रार्थना सुनली। मुकदमे में उनकी विजय हो गई। किन्तु वे भोग चढ़ाना भूल

गए। छः महीने बीत गए, फिर भी उन्होंने भोग नहीं चढ़ाया। आखिर श्रीविहारीजीने स्वप्न में उनसे कहा—"तुमने अब तक भी मेरा भोग नहीं चढ़ाया। यह तो ठीक नहीं है।" जमींदार के प्राण काँप उठे। वह दूसरे ही दिन वृन्दावन पहुँचे, और बड़ी भक्तिसे श्रीविहारीजीको भोग चढ़ाकर उनसे क्षमा याचनाकी। उसी दिनसे उन पर भी विहारीजी का रंग चढ़ गया। वे प्रति अमावस्याको वृन्दावन आते हैं, और बड़े भक्ति-भावसे श्रीविहारीजीके चरणोंमें अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं।

श्रीविहारीजीके चमत्कारकी ऐसी सहस्रों घटनाएँ हैं। प्रायः लोग श्रीविहारीजीके मन्दिरमें मनौतियाँ कर जाते हैं। भक्तों, और प्रेमियोंका यही कहना है, कि विहारीजीके दर्शन से प्रत्यक्ष सुखद फल प्राप्त होता है।

व्रज-रज

इस वसुधा पर व्रज-रज सुधाके तुल्य है। व्रज-रज अमरता प्रदान करती है और शक्तिको भी शक्ति देती है।

गंगा मज्जन करनेसे पावनता प्रदान करती है पर व्रज-रज तो वायुमें उड़कर पावन बनाती रहती है।

अतः व्रज-रजके कण गंगा और यमुनासे भी अधिकतर श्रेष्ठ हैं। उस व्रज-रजके कण, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने क्रीड़न किया है।

उन भगवान् श्रीकृष्णने जिनके पावन चरणोंमें योगियोंके मन-मानस हंसोंके समान, रमण किया करते हैं और जिनके स्मरण मात्रसे पावनताका ऐश्वर्य ही ऐश्वर्य छिटक पड़ता है।

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे चरणोंसे गौरवित हैं व्रजके रजका कण-कण। व्रजकी रज परम पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके चरणोंमें लग-लगकर धन्य ही नहीं, धन्यतर बन गई है।

बड़े-बड़े पातकी भी व्रजकी रजको मस्तक पर लगाकर सहजमें ही स्वर्ग चले जाते हैं। केवल व्रजकी रजका तिलक लगाने मात्रसे जीव कालके भयसे मुक्त हो जाता है।

व्रजकी ऐसी महनीया रज, जिसके वर्णनमें वाणीभी मौन हो जाती है, जीवको बड़े भाग्य और पुण्योंके पश्चात् प्राप्त होती है।

इस व्रज-रजने एक नहीं, लक्ष-लक्ष श्रवणोंसे मुरलीधरकी मुरलीका स्वरामृत पान किया है। इस व्रज-रजने एक नहीं, लक्ष-लक्ष आँखोंसे रास-रस-समुद्र श्रीकृष्णकी रास रचनाएं देखी हैं।

देवियों और देवताओंसे भी श्रेष्ठतर है यह व्रज-रज। अतः हे जीव, यदि तुम्हें अपने शरीरका शृंगार करना है, तो व्रजकी रजके कणोंको ही अपने शरीर पर सजा।

क्योंकि व्रजकी रज पावनसे भी पावनतर है, दिव्यसे भी दिव्यतर है।

श्रीगोविन्द ब्रह्मचारी

"एक से एक सुरम्य शैल और मनोरम पर्वत-श्रृङ्खला सबको छोड़ता—सबको लांघता हुआ परम प्रभुकी पावनतम पुरीमें जा पहुँचा। उस पुरीमें जा पहुँचा, जहाँ प्रभु नारायण अपने ज्योतिर्मय स्वरूपमें भक्तोंको दर्शन देकर कृत-कृत्य करते हैं।"

तीर्थ-यात्राका एक दिव्य पृष्ठ

श्रीशिवकुमार शर्मा 'आलोक'

दफ्तर से लौटनेके पश्चात् थक कर विस्तर पर लेटा ही था कि नारायण तथा माँ की स्मृति ने हृदयको गुदगुदाना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम वही हुआ, जो होना था। उद्वेलन नयनोंकी राहसे वहकर निकलने लगा। मन प्रार्थनामें लीन होकर, कुछ समयके लिये खो-सा गया। फिर स्वतः ही स्वर-युक्त अर्चना का उद्गम हुआ। वाणी स्वतः प्रस्फुटित होकर आत्म नमन करने लगी। सहसा पलँगकी वांई ओर, अनन्त ममतामयी माँके मस्तक की ज्योति दृष्टिगोचर हुई। भालपर छोटीसी बिन्दी अलौकिक आभासे प्रदीप्त थी। दाहिनी ओर दृष्टि गई तो स्तब्ध रह गया। पादुकाओं से सुशोभित दृष्टिगोचर हुए परम पूज्य, अनन्त के पावन चरण। एक क्षणके लिए दोनोंमें वार्तालाप, और फिर दोनों ही अदृश्य।

दूसरे दिन रातमें आठ-नौ के आस पास पुनः वही उद्वेलन, पुन. वही वन्दना, और पुनः वही तन्मयता। पलँग की बाईं ओर, एक दिन पूर्व जहाँ परम ममतामयी माँके शुभ्र-भाल के दर्शन हुए थे, वहीं अनन्त, अनादि सर्वेश्वर नारायण चतुर्भुज रूपमें साकार खड़े थे। हृदय का संपूर्ण अनुराग सिमेटकर, कवि-मस्तक त्वरित सनातनके श्रीचरणोंपर विनत हो उठा। उनका नीचे का दाहिना हाथ, कृपा के साथ तनिक ऊपर उठा। श्री मुखसे पवित्र शब्द निकले—"अब तुम मेरे अपने हुए।" और फिर वह पारलौकिक छवि अदृश्य। चेतना हत-प्रभ होकर, ठगी-सी रह गई। मानसके विहङ्ग वृन्द हृदयके बुदबुदोंके रूपमें नयन-कोटरोंसे झांक कर, टुकुर-टुकुर पंथ को निहारते ही रह गये।

प्रातःकाल यथावत् उठा। फिर वही दफ्तर जाने की तैयारी। मार्गमें रातकी घटना पर मन ही मन उधेड़बुन। सहसा न जाने कहाँसे, सम्मुख ही एक महात्मा प्रकट होगए। बोले—"तुम भक्त हो।"

"हाँ आभास तो मुझे भी होता है"—मैंने उत्तर दिया।

"तुम नारायणकी आराधना करते हो"—महात्माजी ने पुनः कहा।

"सत्य है भगवन् !"—मैंने उत्तर दिया।

"अव तो तुम नारायणके हो"—उन्होंने कहा।

मैं विस्मित होकर उनकी ओर देखने लगा, और मन ही मन रातकी घटनासे उसका तारतम्य जोड़ने लगा। पर वे तो किंचित् मुसुकुराकर आगे बढ़ गए और कुछ दूर जाकर इस प्रकार अदृश्य होगए, कि फिर खोजने पर भी न मिले।

मैं स्तब्ध—किंकर्त्तव्य विमूढ़ आफिस पहुँचा, और अपने एक अनन्य सहयोगीको, ज्यों का त्यों सब कुछ कह सुनाया। उन्होंने मुझे परामर्श दिया, कि मैं बद्रीनाथकी यात्रा करूँ। फलस्वरूप मैंने एक मासके अवकाशकेलिए आवेदन पत्र दे दिया। प्रभुकी कृपा ! आवेदन पत्र स्वीकृत हुआ, और तदनुसार मेरी बद्रीनाथ-यात्राका शुभारंभ हुआ।

मैं रात की गाड़ी-द्वारा हरिद्वार पहुँचा और फिर उसी दिन ऋषिकेश और लक्ष्मण-झूला। स्नान ध्यानके पश्चात् अपराह्न, तीन बजे की मोटरसे देवप्रयागके लिए चल पड़ा। मोटर मार्ग पर सर्पाकार गतिसे, गङ्गाके किनारे-किनारे हिमालयके शिखरोंकी ओर बढ़ने लगी। गो-धूलिके आगमनके साथ ही साथ मोटर देवप्रयाग पहुँची। मार्गके सीढ़ियोंके समान बने हुए हरे-भरे खेत अब भी मनको अपनी ओर खींच रहे थे। श्रीरघुनाथजीके मंदिरके ठीक नीचे ही, एक तीर्थ-पुरोहितके घरमें आश्रय लिया। रातके दस बजरहे थे। चुपचाप उठा,और अलकनन्दा तथा भागीरथीके संगमपर जाकर बैठ गया। जो अकल्पित आनन्द प्राप्त हुआ, शब्दोंमें शक्ति नहीं, कि उनके द्वारा उसका चित्रांकन कर सकूँ। वह आनन्द-महान् आनन्द केवल अनुभव की वस्तु है।

प्रातःकाल आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर आगेके लिए चल पड़ा। मार्गमें मनमोहक दृश्यावलियाँ, और नीचे सर्पाकार गतिसे कल-कल करती हुई पाप-विनाशिनी अलकनन्दाकी पुनीत धारा। कहीं छोटी. कहीं बड़ी घाटियाँ सुन्दर, बहुत ही सुरम्य। श्रीनगर, कर्णप्रयाग, नन्द प्रयाग और चमोली होता हुआ पीपलकोटि पहुँचा। छूटा हुआ पथ, उसके मनोरम और पावन दृश्य रह-रहकर मनके भीतरसे झाँक रहे थे। रुद्रप्रयागमें मन्दाकिनी और अलकनन्दा का पुनीत संगम 'हर हर' गूँजता हुआ संगीत ! अब भी प्राणों में गूँज रहा था। सिंह पर सुआसना माँ भवानीकी दिव्य प्रतिमा और भगवान् त्रिपुरारिका त्रिपुण्ड-राजित ज्योर्तलिंग ! रह रहकर स्मरण हो पड़ता था। कर्णप्रयागका श्याम वर्णी पिंडारी ग्लेशियर, और उसमें अलकनन्दाका आत्म विलय ! अनुपम चित्र था। वह चित्र अब भी नेत्रोंमें नाच रहा था। नन्दप्रयागमें नन्दादेवीका सुदिव्य दर्शन ! मन में रह-रह कर पुनर्दर्शनकी लालसा जग रही थी। पर वह छूटा हुआ पथ, और उसकी विभूतियां ! आगे बढ़नेके लिए उसकी स्मृति पर, विस्मृति का आवरण डालना ही पड़ा।

रात पीपल कोटिमेंही कटी। प्रभात होते ही जोशीमठकी ओर चल पड़ा। मार्गमें वही सुरम्य दृश्यावलियाँ, वही हरियाली और वही अलकनन्दाका कल-कल निनाद। अपराह्न से पूर्वही जोशीमठ पहुँच गया। धर्मशालामें आश्रय लिया। अलकनन्दा और विष्णुगङ्गाका पुनीत संगम ! केवल दर्शन मात्रसे ही चित्त आनन्द-विभोर हो उठा। स्नानके पश्चात्

ध्यानस्थ हुआ तो नारायणका पुनीत दर्शन ! माँकी भी पुनीत झाँकी मिली । श्वेत चन्दनके त्रिपुण्ड से अलंकृत विश्वम्भर के पुनीत दर्शन बार-बार हुए । उसी दिन विष्णु प्रयागके पवित्र-जलसे ज्योतीश्वर महादेवका अर्चन किया । भोलेनाथ प्रसन्न हुए । अनुकम्पा करके प्रकट हुए । अलौकिक प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था उनके भीतरसे । अनन्त परम पुरुष प्रभु नारायण ने भी दर्शन दिये व सायंकाल मठमें, ज्योतिष पीठाधीश्वर स्वामी शारदानन्द सरस्वतीजी का प्रवचन भी सुना । उन्होंने अपनी अमृतमयी वाणीसे हृदयमें अमृतका रस घोल दिया । ऐसा रस, जिसका सादृश्य जगत्का कोई अन्य 'रस' कर नहीं सकता ।

प्रातःकाल स्नानके पश्चात् पुनः मोटर पकड़ी, और भगवान् बद्रीनारायणके पवित्र धामकी ओर चल पड़ा । मार्गमें पाण्डुकेश्वरका पुनीत दर्शन । प्राण पवित्र हो उठे । एकसे एक सुरम्य शैल, और मनोरम पर्वत शृङ्खला । सबको छोड़ता, सबको लाँघता हुआ परम प्रभुकी पावनतम पुरीमें जा पहुँचा । उस पुरीमें जा पहुँचा, जहाँ परम प्रभु नारायण अपने ज्योतिर्मय स्वरूपमें भक्तोंको दर्शन देकर कृतकृत्य करते हैं । तप्तकुण्डमें स्नान किया, तो ऐसा लगा, मानो शरीरके भीतर नई शक्ति-सी जाग पड़ी हो । दर्शन हुए प्रभुके विभिन्न रूपोंमें—श्रीराम के रूपमें, श्रीकृष्णके रूपमें, चतुर्भुज रूपमें । शब्दोंमें सामर्थ्य नहीं, कि प्रभुकी छविका चित्र खींच सकूँ । केवल देखता रहा-देखता रहा । रह-रहकर इच्छा होती थी समा जाऊँ उस अतुल छवि में । विवशता रह-रहकर आँखोंसे बहने लगी । तीन दिन-तीन रात तक बहती रही, और बहती रही । चलने को हुआ तो प्राण भी गल-गल कर आँखोंसे निकलने लगे । पैरोंने भी आगे बढ़नेसे अस्वीकार कर दिया । आखिर नारायणको प्रकट होना ही पड़ा । मुसुकुराते हुए बोले—"विष्णुप्रयागसे जल लेकर नैपाल जाओ, और पशुपतिनाथका अर्चन करो ।"

प्रभुकी आज्ञासे ही मैं विष्णुप्रयागसे जल लेकर मुरादाबाद पहुँचा, और अपनी यात्राकी नई व्यवस्था करके नैपाल की ओर अग्रसर हुआ । प्रभुका आदेश ! वह आदेश ही तो पशुपतिनाथकी यात्रामें वरदान सिद्ध हुआ—अद्भुत वरदान !!

अमृत मथन

क्या कहा कि जीवन दुख है ? नहीं, मित्र, जीवन तो वही है, जो हम उसे बना लेते हैं । जीवन तुम्हें आनन्द नहीं बनेगा, जब तक कि तुम उसे आनन्द न बनालो । जीवन तो बस एक अवसर है । वह तो एक रिक्तता है । उसे तो हम अपने जीनेसे ही भरते और पूर्ण करते हैं । मनुष्य को जीवन मिला हुआ नहीं है, वह तो रोज-रोज जीता है, और उसे निर्मित करता है । जीवन आत्म सृजन है और इसीलिये मनुष्य किसी और के प्रति नहीं, बस स्वयं के प्रति ही उत्तरदायी है ।

मैंने तुम्हारी पूजा देखी और तुम्हारी प्रार्थनायें सुनीं । अब तुम कह सकते हो कि मैं कुछ कहूं ? मैं क्या कहूं ? बस इतनाही कहता हूं "प्रार्थना में यही कहीं अधिक उचित है कि हृदय हो शब्द न हो । बजाय इसके कि शब्द हों और हृदय न हो, लेकिन होता इससे उल्टा ही है और इसलिये ही तो प्रार्थनायें प्रेम नहीं बन पाती हैं और पूजायें रह जाती है । फिर इन निष्प्राण पूजाओंसे परमात्मा कैसे मिले ? इन प्रेमशून्य प्रार्थनाओंसे उसके द्वार कैसे खुलें ? परमात्मा पत्थर होता तो निष्प्राण प्रार्थनायें और पूजायें जरूर उस तक पहुँच जातीं । पत्थरोंमें परमात्मा भले ही हो, पर परमात्मा पत्थर नहीं है, इसलिये जो प्रेम और प्राणसे उसके किट पहुँचते हैं केवल वे ही उसके निकट पहुंच पाते हैं । [आचार्य रजनीश]

ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टिसे व्रजके महत्वपूर्ण, किन्तु अल्पज्ञात स्थानोंका चित्रण

"व्रजक्षेत्रके अनेक स्थल, वन और उपवन, कुण्ड और सरोवर, मठ और मन्दिर तथा ग्राम श्रीकृष्णकी लीलास्थली होनेके अतिरिक्त देवताओं, मुनियों, संतों, महात्माओं और राजाओं की तपोभूमि तथा कर्मभूमिके रूपमें प्रसिद्ध हैं। कई स्थल बड़े-बड़े दानवों तकके कारण प्रसिद्ध हैं।"

व्रज क्षेत्रके कुछ अल्पज्ञात स्थल

ज्यो० श्रीराधेश्याम द्विवेदी

व्रजभूमि पुराणोंके अनुसार गोलोक है। भगवान् श्रीकृष्णने तो इसको गोलोकसे भी अधिक अपनी प्रिय भूमि कहा है। श्रीकृष्णकी जन्मभूमि और क्रीड़ा-भूमि होनेके कारण मथुरा का पौराणिक, सांस्कृतिक और साथ ही ऐतिहासिक महत्व है। व्रज क्षेत्रके अनेक स्थल, वन और उपवन, कुंड और सरोवर, मठ और मन्दिर तथा ग्राम श्रीकृष्णकी लीला-स्थली होनेके अतिरिक्त देवताओं, मुनियों, सन्तों, महात्माओं और राजाओंकी तपोभूमि तथा कर्म भूमिके रूपमें प्रसिद्ध हैं। कई स्थल बड़े-बड़े दानवों तकके कारण प्रसिद्ध हैं।

व्रजराजधानी मथुरा, मधुवन और शूरसेन प्रदेशकी ख्याति तो श्रीकृष्णके जन्मसे पूर्व ही हो चुकी थी। अकेली मधुपुरीमें ही युगों पुराने अनेक स्थल हैं, जो आज भी अप्रसिद्ध और अल्पज्ञात हैं। प्राचीन मथुरा देवी, आदिवाराह, भगवान् पद्मनाभ, वीर भद्रेश्वर और मथुराके संस्थापक शत्रुघ्नजीका मन्दिर तथा दीर्घविष्णु आदि अन्य अनेक महत्वपूर्ण स्थानोंकी महिमा कम लोग जानते हैं, और बहुत कम लोगोंने इन स्थानोंके दर्शन किये होंगे। मथुरा देवी मथुरापुरीकी प्रथम आराध्या देवी हैं जिसका मन्दिर सीतलापाइसा मुहल्ले में है। मथुरादेवीके समीप ही दीर्घ विष्णुका प्राचीन मन्दिर है। पद्मनाभजीका मन्दिरभी पौराणिक महत्वका दर्शनीय स्थान है। मानिकचौक मुहल्ले में आदि वाराहका मन्दिर तो सबसे प्राचीन मन्दिर है, जिसकी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर और अपूर्व एवं दिव्य है। चौबच्चा मुहल्लेमें श्रीशत्रुघ्न जीका मन्दिर भी अति प्राचीन है। इनके अतिरिक्त विश्राम घाटके उत्तर और दक्षिणमें उत्तर और दक्षिण कोटिके बारह-बारह पवित्र घाट हैं, जो पौराणिक और ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वके हैं। इन घाटोंकी महिमा और विशेषता भी अल्पज्ञात है।

उत्तरकी ओरके बारह घाट

१. अविमुक्त घाट :—यहाँ महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने श्रीमद्भागवतकी सप्ताह

परायणकी तथा यमुनाष्टक गान किया। यहींसे उन्होंने अपनी प्रथम व्रज-वन यात्राका श्रीगणेश किया था। : २ : मणिकर्णिका तीर्थ—यहाँ श्रीयमुना और मणिकर्णिका सरोवरका संगम है। : ३ : असिकुण्डा तीर्थ—इसे आजकल असकुण्डा घाट कहते हैं। यह पौराणिक महत्वका घाट है। यहाँ भगवान् वाराहने दुष्ट दानवोंसे प्रजाकी रक्षार्थ अपने असिकी स्थापना की थी। ४: नव भंजक घाट—यहाँ निम्बार्क सम्प्रदायका एक बड़ा मन्दिर था, जिसे तुगलकखाँने तोड़ा था। : ५ : संयमन घाट—इसे आजकल स्वामीघाट कहते हैं। यहाँ स्वयंभू मनुका आश्रम था। : ६ : घंटाकर्ण किंवा धारायतन तीर्थ—यहाँ आजकल कहे जाने वाले स्थानसे एक प्राकृतिक धारा यमुनाजीमें गिरती थी। : ७ : सोमतीर्थ—इसे आजकल गऊ घाट कहते हैं। यहाँ ऋषि उपमन्युका आश्रम था। : ८ : कृष्ण गंगा—यहाँ कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास मुनिका आश्रम तथा तपोभूमि थी। वाराह पुराणके अनुसार यहीं वेदव्यासजीने पुराणोंकी रचना की थी—

> शृणु चान्यद् वरारोहे, कृष्णगंगा समुद्भवनः।
> यमुना स्रोतसि स्नात्वा, कृष्ण द्वैपायनोमुनिः॥
> सोमवैकुण्ठयोर्मध्ये, कृष्णगंगेति कथ्यते।
> तत्रात्तप्यत्तपो व्यासो मथुरायां स्थितोऽमलः॥

यहाँ कालिन्दी गंगा और यमुनाका संगम है। : ९ : चक्रतीर्थ—यहाँ राजा अम्बरीष की रक्षाके लिए भगवान्ने अपने चक्रकी स्थापनाकी थी। पासमें ही अम्बरीपकी तपोभूमि—अम्बरीप टीला भी स्थित है। : १० : अंगिरस तीर्थ—यहाँ अंगिरा ऋषिकी तपःस्थली थी। : ११ : गोकर्ण क्षेत्र—यहाँ महर्षि गौतमका आश्रम और तपोभूमि थी। बौद्धकालमें इसका बड़ा महत्व था। पासमें ही एक विशाल विहार था। यहाँसे बहुत सी प्राचीन सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं। इसका पौराणिक और ऐतिहासिक महत्व भी अधिक है। इसका विस्तार अम्बरीष टीलेसे गणेश तीर्थ या कहना चाहिये श्रीभगवद्गीतामन्दिर तक है। पास ही चक्रतीर्थ और भद्रेश्वर महादेवका प्राचीन मन्दिर है, जिसकी महिमा वाराह पुराणमें वर्णित है। चक्रतीर्थ तथा अम्वरीष टीलेका वर्णन श्रीमद्भागवत्में आता है। पद्मपुराणके अनुसार यमुनातटपर अम्बरीषजीका निवास स्थान था। जैन धर्मग्रन्थोंमें भी चक्रतीर्थका वर्णन है। इसके समीप ही एक समाधि है, जिसे अकबरकालीन बीकानेरके राजा पृथ्वीराजकी समाधि कहा जाता है। आज कल समाधि पत्थरकी एक बारादरीके रूपमें है। कुछ लोग इसे तांत्रिक वाग्भट्टकी समाधिभी बताते हैं। कुछ लोगोंका कथन है कि यह बारादरी गोस्वामी तुलसीदासजीके गुरु नरहरिदास का निवास स्थान है। जब वे मथुरा आते थे, तो यहीं निवास करते थे। समाधिके समीप ही ज्ञान व्यापी है, जो प्राचीन कालमें ज्ञान चर्चाका केन्द्र था। यहाँ धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन, उद्धव और श्रीकृष्ण ज्ञान चर्चा किया करते थे। गर्ग संहिताके अनुसार महाराज परीक्षितके पुत्र जनमेजयको वृहस्पतिजीने नागयज्ञके निषेधका ज्ञान इसी स्थान पर दिया था। कुछ लोगों का कथन है कि कृष्ण बलरामने इसी स्थान पर कंसके धोबी—रजकका वध किया था, जिसकी स्मृतिमें आज भी यहाँ कार्तिक सुदी सप्तमीको धोबी-वध लीला होती है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि यहाँ गोकर्ण नामक वैश्यने धन-प्राप्तिके लिए भगवान् शिवकी तपस्या की थी।

कुछ लोगोंका कहना है कि यहाँ गोकर्णजीने भागवत पुराणका सप्ताह परायण करके धुन्धुकारी को प्रेत योनिसे मुक्ति दिलायी थी।

दक्षिणकी ओरके बारह घाट

: १ : गुह्य तीर्थ—यहाँ सतीका ऐतिहासिक बुर्ज है। : २ : योगमायातीर्थ-समीपमें ही योगमाया चर्चिका देवीका मन्दिर है। यहाँ कंसने योगमायाको पछाड़नेका प्रयत्न किया था। चर्चिका देवी कंसके शस्त्रागारकी स्वामिनी थी। : ३ : प्रयागघाट—यहाँ प्रयाग तीर्थ राज है। पुराणोंमें तीर्थराजके यहाँ आने की बड़ी विचित्र कथा है। तीर्थराज होनेके कारण उसे गर्व था कि मैं अन्यत्र क्यों जाऊँ? भगवान् श्रीकृष्णसे उसने इस बातकी शिकायतकी कि सब तीर्थ मेरे यहाँ आते हैं, किन्तु तीर्थपुरी मथुरा तथा विश्राम तीर्थ मेरे यहाँ नहीं आते। भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी जन्मभूमि तथा विश्राम तीर्थकी महिमा बताई। इस प्रकार उसका गर्व खंडन किया और उसे मथुरापुरीमें जानेका आदेश दिया। तीर्थराज प्रयाग मथुरामें आया और विश्रामके समीप ही अपना तीर्थ स्थापित किया। : ४ : श्याम घाट—यहाँ अष्टछापके प्रसिद्ध कवि छीतस्वामीके इष्टदेव श्यामा श्यामका मन्दिर है। उन्हींके नामपर इसका नाम श्यामघाट पड़ा है। :५: रामघाट–यहाँ रामेश्वर तीर्थ है। :६: रामघाटके आगे दक्ष प्रजापतिका वनखंड तीर्थ है। : ७ : तिंदुकतीर्थ—इसे आजकल बंगालीघाट कहते हैं। राजा तिंदुकने यहीं तपस्या की थी। : ८ : सूर्यघाट—यहाँ श्रीकृष्णके पुत्र साम्वने सूर्यकी तपस्याकी थी। : ९ : ध्रुव क्षेत्र—यह ध्रुवजीकी तपस्याका स्थान है। : १० : बटु स्वामी क्षेत्र—वामन अवतारकालीन महत्वपूर्ण पौराणिक स्थान है। : ११ : सप्तऋषि तीर्थ—यह सप्तऋषियोंसे सम्बन्धित है। : १२ : रावण तीर्थ—रावणसे सम्बन्धित है।

अन्य महत्वपूर्ण स्थानोंमें संहारतीर्थ, गोपालबाग, सप्त समुद्री कूप, वनखण्डी महादेव का मन्दिर आदि मुख्य हैं। गोपालबागमें सूर्यनारायणकी प्राचीन मूर्ति है। श्रीकृष्ण और बलराम यहीं देवकी और वसुदेवको गोचारणलीला दिखानेके लिए ले गये थे। सप्त समुद्रीकूप डेम्पियर पार्कमें है। इसे नागतीर्थ भी कहते हैं। नागदेवताने यहाँ बहुतसे यज्ञ किए थे। वनखण्डी महादेवका मन्दिर वनखण्डी मुहल्ले में है। कहा जाता है कि प्राचीनकालमें यहाँ सघन वन खण्ड था। यहीं मथुराके प्रसिद्ध पहलवान जगन्नाथ गुरुकी चरण चौकी है, जिसकी पूजा आज भी पहलवान लोग आषाढ़ी पूर्णिमाके दिन करते हैं।

इस प्रकार मथुरामें अनेक तीर्थ, स्थान, घाट हैं, जो पौराणिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्व रखते हैं। कितना अच्छा होता कि इन स्थानोंमें उनके नामके शिला पट्ट लगा दिये जाते। आशा है, सुधीजन इस पर विचार करेंगे।



भक्तिका महत्त्व

जिस पुरुषकी भगवान्में निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें समस्त देवता धर्म-ज्ञानादि सम्पूर्ण सद्गुणोंके सहित सदा निवास करते हैं। किन्तु जो भगवान्का भक्त नहीं है, उसमें महापुरुषोंके वे गुण आही कहाँसे सकते हैं। वह तो तरह-तरहके संकल्प करके निरन्तर तुच्छ बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है।

[श्रीमद्भागवतसे]

आध्यात्मिक कवि स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोरकी गीतांजलिकी एक झाँकी

"जहाँ चित्त निर्भय है, जहाँ ज्ञान मुक्त है, जहाँ संकीर्णताओं की भित्तियोंसे विश्व विखंडित नहीं हुआ है, जहाँ वाणी सत्यके अन्तःस्थलसे उद्‌गीर्ण होती है, जहाँ अक्लान्त परिश्रमसे कर्मकी पूर्णता होती है, जहाँ क्षुद्र रूढ़ियोंकी मरुभूमिमें ज्ञानकी पीयूषधारा लुप्त नहीं हुई है, वहाँ—उस स्वतन्त्रता के स्वर्गमें मेरा भारत जागृत हो।"

गुरुदेवका स्वर्ण कलश

श्रीपाद शास्त्री

गीतांजलि गुरुदेवके कीर्तिशिखरका सुवर्ण कलश है। कलशमात्रके दर्शनसे देवताके दर्शनका पुण्यलाभ होता है, ऐसी भाविकोंकी मान्यता है। इसी प्रकार गुरुदेवके वाङ्‌मन्दिरमें प्रवेश पाकर उनकी वाङ्‌मयी मूर्तिके दर्शन पाना जिन्हें संभव नहीं हैं, उन्हें गीतांजलिके स्वर्णकलशके दर्शनमात्रसे गुरुदेवकी मनोमय मूर्तिका साक्षात्कार होगा। गुरुदेवकी दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यतायें, धारणायें एवं आस्थायें—उनकी अन्तरात्मा गीतांजलिमें प्रकट हुई हैं। अव्यक्त परमात्माके पादपद्मोंमें अर्पण करनेके हेतु गीतांजलि, गीतिभास्य, नैवेद्य, खेया, शिशु, चैताली, स्मरण, कल्पना, उन्जर्ग एवं अचलायतन—इन काव्योंसे चुनी हुई रचनाएँ लेकर गीतांजलिकी रचना की गई है। परमेश्वरको अर्पण करनेके लिए पुष्पमाला गूंथनी है, अतः वह उत्कृष्ट होनी ही चाहिए।

गीतांजलिमें आर्त्त हृदयका आह्वान विशुद्ध भारतीय वैचारिक अन्तःप्रवाहमें निःसृत हुआ है। उसमें किसी अन्य धर्मके विचारोंकी छाया भी नहीं है। गीतांजलिकी भाषा-पद्धति बाइबिलकी सी है। भाव, रचना, स्वर साम्यको देखकर हम विस्मयाभिभूत हो जाते हैं।

इसे आधुनिक युगका धर्मग्रन्थ कहा जा सकता है। हमारे अन्तःकरणकी अव्यक्त, अननुभूत, अभूतपूर्व एवं अदृश्य मनोव्यथाएँ तरंगित हुआ करती हैं। यह हृदव्यथा इतनी सूक्ष्म होती है कि उसके उद्‌गमका हमें ज्ञान भी नहीं होता। हृदय क्यों व्याकुल हो जाता है? इसका हमें ज्ञान नहीं होने पाता। इसका उद्‌घाटन गीतांजलि में हुआ है। गीतांजलिको पढ़कर अद्‌भुत, अननुभूत शक्तिका लाभ होता है। गीतांजलि मानसिक, हार्दिक उत्कण्ठाओंकी पूर्ति करनेवाली तथा अत्यधिक समाधानका लाभ करनेवाली कामधेनु है।

गीतांजलिमें भारतीयोंकी आकांक्षा एवं मानव प्रवृत्तियाँ व्यक्त हुई हैं। गीतांजलि आध्यात्मिकतासे परिपूर्ण है। जनम मरणको दण्ड न मानकर उसके प्रति उत्कण्ठिता सृष्टिकी सुषमामें मोहित मनुष्यमात्रके प्रति कर्तव्य, ईश्वरका शोध, उसके चरणोंमें लीनता आदि

भावनाएँ इन गीतोंमें व्यक्त हुई हैं। "संसार केवल माया है, नश्वर है, अतः त्याज्य है" इस प्रवृत्तिका पुरस्कार गुरुदेवने नहीं दिया है। उन्होंने प्रभुका मार्ग अवरुद्ध करनेवाली वस्तुओं का सदुपयोग किया है। उन्होंने सांसारिक त्रिविध (आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) तापोंका आत्मोन्नतिके हेतु उपयोग कर अपने काव्य द्वारा विश्वके नृत्यशील-तालवद्ध आनन्दका "पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते". संदेश दिया है, जिससे विश्व मोहित हो गया, और पाश्चात्योंकी जड़ता चैतन्यमयी हो गई। 'अध्यात्मविद्या विद्यानां' इसकी सत्यता उनके गीतोंमें प्रकट हुई है। 'आत्मवत्सर्वभूतेषु,' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' 'चिदानन्दस्वरूपी केवलं 'शिवोऽहं' 'तत्वमसि' आदि श्रुति स्मृति वाक्योंको गुरुदेवने अपनी पीयूषस्रावी वाणी में, नूतन परिवेशमें प्रस्तुत किया है। आइए, गीतांजलिके कुछ गीतोंका रसास्वाद लें—

'यह आपकी सभा है, किन्तु आप वहाँ न होकर अतिशय दरिद्र, दीन, पतितजनोंकी वसतिमें रहते हैं। जहाँ भूपुत्र ग्रीष्म एवं वर्षामें अपनी अनुर्वरा कठोरा भूमि में हल चला रहा है, जहाँ श्रमिक अत्यन्त परिश्रमसे रास्तेके पत्थरोंका तोड़ रहे हैं, जहाँ झाड़ू लग रही है, वहाँ आपका अधिष्ठान है। तुम यदि मूल्यवान् वस्त्रोंके कारण आ नहीं पा रहे हो तो उन्हें फेंक दो और उन्हींके समान इस धूलिमयी भूमिपर काम करो, तुम्हारे वस्त्र फट रहे हों, मलिन हो रहे हों, उसकी चिन्ता न करो। उनसे मिलो और पसीने से शरीर भीग जाए, इतना श्रम करो।

'मेरे पास जो कूड़ा करकट है, उसे फेंकनेका धैर्य नहीं हो रहा है। मेरे कर्म भयंकर हैं—गोपनीय और लज्जाजनक, किन्तु मैं जव अपने मंगलकी कामनासे तुम्हारी शरणमें आऊँ तो मेरी प्रार्थना अस्वीकार तो नहीं होगी न ? इस भयसे शंकित होता हूँ और मेरे सर्वांग प्रकम्पित होते हैं।

'दुःख संसारकी श्रेष्ठ वस्तु है, किन्तु परमेश्वरको अर्पण करनेके लिए यदि कोई वस्तु हमारी है तो वह है दुःख।

'पुष्प अपने परिमलसे वायुको सौरभित करता है, किन्तु उसका अन्तिम ध्येय आपके चरणोंमें, स्वतःको विसर्जन-अर्पण करना होता है।

'द्वार-द्वार मार्ग में क्षमा-याचना करनेवाले भक्तको आपका स्वप्न-सुन्दर सुवर्ण रथ दिखा और राजराजेश्वरके आगमनसे उसकी आशायें भी व्यक्तिगत होती गयीं। अब दुर्दिन गये, अब जिधर देखूँगा, वहीं धूलिमें पड़ी हुई सम्पत्ति दृष्टिगोचर होगी। इस प्रकार वह सोचने लगा। रथ रुक गया, परमात्मा स्मित करते हुए नीचे आये। भक्तने अनुभव किया कि अन्तमें भाग्यने हाथ दे ही दिया, किन्तु परमात्माने अपना दक्षिण हस्त उसके सामने फैलाकर पूछा—देनेके लिए तुम्हारे पास क्या है ? मुझ जैसे अकिंचन दरिद्रके सम्मुख भिक्षा याचना ! तुम्हारे इस राजविनोदको क्या कहूँ ? भक्तने अपनी झोलीसे एक वहुत ही वारीक दानेका कण निकालकर उसे दिया। जव वह सोनेका हो गया तो वह रोकर कहने लगा—'मैं भी कितना अभागा हूँ कि अपना सर्वस्व तुम्हें अर्पण करनेकी बुद्धि मुझे नहीं हुई।

'युवकने अपनी प्रेयसीको तेजस्वी और इन्द्रवज्रके समान अभेद्य खड्ग दिया। वस्तुतः उसे इस खड्गसे क्या लेना था, किन्तु फिर भी उसने उस दुःख भारस्वरूप खड्गके दानको

सँभाल-सँवार के रखा और उसे अपनी सम्मानदात्री समझती रही। अब उसे संसारमें किसी भी प्रकारका भय नहीं था। पाश-मुक्तिके लिए उसके पास प्रियप्रदत्त खड्ग जो है।

'इस संसारमें जो मुझे प्यार करते हैं, वे सभी मुझे बद्ध करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। वे मुझे अकेला नहीं छोड़ेंगे।

'वे कहते हैं कि हम तुम्हारी देवपूजामें सहायता करेंगे किन्तु मैं देख रहा हूँ वे ऊधम मचा रहे हैं।

'संसारके बन्धन ही दृढ़ हैं। उससे मैं स्वतःको पराजयसे नहीं बचा सकता हूँ—क्योंकि वह मेरी सामर्थ्यके बाहर है।

'मेरे प्रभु ! मुझे मेरे सुख-दुःखको सहने की शक्ति दो, क्षुद्र बातोंसे मेरे मनको दूर रखो। यदि बद्ध करनेकी ही इच्छा है तो मुझे बद्ध करनेवाले पाशोंमें से उसी पाशमात्रमें बद्ध करो, जिससे मैं तुमसे सम्बद्ध रह सकूँ—वही पाश शेष रहें और तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो, ऐसा मैं कह सकूँ, इतनी ही भावना मुझमें शेष रहे।

'सांसारिक कामोंमें मेरे आसपास बहुत शोर मचा रहता है, जिससे मैं तुम्हारे दर्शनोंसे वंचित हो जाता हूँ, इसलिए मेरे शान्तिनाथ ! तुम अपनी शांति और विश्रांतिके साथ-साथ मेरे पास आओ।

'मैं अखण्ड गीत गाकर तुम्हारी कथायें कहता हूँ, इससे मेरी गोपनीयता हृदयके बाहर प्रकट होती है। क्या जाने मेरे गीतोंका क्या अर्थ है ?

'मेरे गीत अलंकार रहित हैं—सुन्दर वेश-भूषा-भूषणोंसे रहित हैं। भूषणोंके कारण हमारे तादात्म्यमें व्यवधान-व्यत्यय निर्माण हो जाएगा, वे हमारे तुम्हारे मध्य हो जायेंगे एवं उनकी ध्वनि तुम्हारी मन्द मधु-मधुर ध्वनि को मिटा देगी।

'स्वच्छन्द सागर लहरियोंके समान मेरे गान स्वतन्त्र हैं। वे शब्दोंके बन्धनोंसे मुक्त हैं। मैं व्यर्थ शब्दाडम्बर न करूँ, यही मेरे स्वामीकी कामना है।

'अन्तःस्तलकी वाणी अब केवल गान-गायनके रूपमें व्यक्त होगी। मैं अनन्तसुरमें अपने सुरोंका विलय करूँगा।

'परमात्माके निकट जानेके मार्ग अत्यन्त कठिन हैं—व्यवधानयुक्त हैं। सरल मार्ग यदि है तो वह प्रेममय मधुर गीत-गायन का।

'मैंने जीवनभर तुम्हें पा लिया है, उसीने मुझें एक भूमिका में प्रविष्ट कराया है। उसीसे मैं अन्तर्मुख हुआ और स्वतःका पर्यायलोचन कर सका। उसीसे गूढ़तम रहस्योंका उद्घाटन भी हुआ। मैं अपने जीवनका सर्वस्व, अपनी आज तककी उपलब्धियाँ, अपने अतिथि को अर्पण करूँगा, उसे रिक्त हस्त जाने न दूँगा।

'इस लोकमें अपने प्राणोंके समान ही मृत्युको भी प्रेम करूँगा।

'जहाँ चित्त निर्भय है, जहाँ ज्ञान मुक्त है, जहाँ संकीर्णताओंकी भित्तियोंसे विश्व विखण्डित नहीं हुआ है, जहाँ वाणी सत्यके अन्तःस्तलसे उद्गीर्ण होती है, जहाँ अक्लान्त परिश्रमसे कर्म की पूर्णता होती है, जहाँ क्षुद्र रुढ़ियोंकी मरुभूमिमें ज्ञानकी पियूषधारा लुप्त नहीं हुई है, वहाँ, उस स्वतन्त्रताके स्वर्गमें मेरा भारत जागृत हो।

इस प्रकार लीनता, भूतदया, विश्वमानवता एवं स्वर्गीय आनन्द—इस गुण चतुष्टयके आधारपर गुरुदेवकी गीतांजलि प्रवाहित हुई। जब तक रसिकता रहेगी, उसका मनन-अध्ययन होता रहेगा।

—*—

"मैंने सोचा था जाति-प्रेम सिखाना गलत है, परन्तु जब न सिखानेसे हानिका भय हो. और अन्य लोग अनुचित ढंग से इसका लाभ उठाने लगें, तब तो जाति-प्रेम सिखाना ही चाहिए, लड़ाई को रोकनेके लिए लड़ना ही चाहिए।"

भगवान्‌की प्रतिमा

श्रीमहेन्द्र सरल

मैं आर्य समाजी विचारोंका समर्थक था। अपने घरमें केवल राजनीतिक नेताओंके चित्रही सजाता रहा था। देवताओंके चित्र या मूर्तियाँ खरीदनेमें न मैंने कभी एक पाई व्यय की, न उन्हें उपलब्ध करनेके लिए अन्य कोई प्रयास किया। साथही यहभी मानता था कि देशकी जो अवस्था आजकल चल रही है, उसमें अँग्रेजीकी शिक्षा बहुत आवश्यक है। इसलिए अपने दोनों बच्चोंको मैंने जानबूझकर अपने गुरुजनोंकी इच्छाके विरुद्ध कान्वेण्ट स्कूलमें भरती करा रक्खा था। बच्चे जब स्कूल जाते थे, तब उनकी विदेशी पोशाक भी मुझे उनके प्रति हानिकारक नहीं लगती। परन्तु हाँ जब वे घर में होते थे, तब मेरे विशेष आदेशके अनुसार पूर्णरूप से भारतीय वेशभूषामें ही रहते थे। घरसे बाहर आते-जाते समय बाजारमें या जान, पहचानवालोंके घर या मेले उत्सवों में सभी जगह अपनी भारतीय वेशभूषा ही रहती थी।

अपने स्कूलके समयके अतिरिक्त जब कभी मेरे बच्चे अँग्रेजीमें बातचीत करने लगते थे, तो मैं उन्हें निरुत्साहित नहीं करता। सोचता था जब यह विदेशी भाषा उन्हें सीखनी ही है, तो अभ्यास में रोकथाम लगाना उचित नहीं। अपनी भाषा तो उन्हें आती ही है। हर समय उसका अभ्यास भी चलता रहता है। फिर अपनी भाषा भला कोई भूल सकता है?

परन्तु धीरे-धीरे यहाँ तक नौवत आयी कि बच्चोंने हिन्दी बोलना बिलकुल बन्द कर दिया, और मेरा घर काफी अंशों में अँग्रेजी रंग में रंगता गया।

एक बार मैं बच्चोंकी किताबोंको उलट-पलटकर देख रहा था कि उनमें से 'ईसा-मसीह' और 'मेरी' के चित्र निकल पड़े। उन्हें देखकर क्षणभरके लिए मैं खोया-सा रह गया। परन्तु दूसरे ही क्षण मैंने अपने हृदयको समझाया कि बच्चोंके पास इन चित्रोंके रहने में कोई हानि नहीं है। महापुरुष चाहे वे किसी भी धर्म विशेषके पुजारी क्यों न हों, सारे संसारके लिए आदर्श होते हैं। उनके जीवनकी घटनायें अन्य धर्मानुयायी लोगोंके लिएभी पथ-प्रदर्शनका काम करती हैं। हर धर्म में आदर्श जीवन व्यतीत करनेकी शिक्षा दी जाती है। यदि हर एक व्यक्ति अपने-अपने धर्मका कट्टर अनुयायी हो जाये तो फिर हरेक व्यक्ति आदर्श बन जाये और मानवता चमक उठे। कोई धर्म यह नहीं कहता कि दूसरोंसे घृणा

करो। कोई धर्म यह नहीं कहता कि दूसरोंको मारकाटकर उनका नाश करो और अपना प्रचार करो या अनुचित ढंग से अपने धर्मानुयाइयोंकी संख्या बढ़ाओ। बच्चे इन बातोंको नहीं समझते। उन्हें तो चित्रोंसे विशेष प्रेम होता है। वे हरेक चित्रको सँजोकर रखेंगे, चाहे वह अपने धर्मसे सम्बन्धित हो या दूसरेके धर्मसे। उनके लिए धर्म भेद कोई चीज नहीं होती। बच्चे सब एक हैं चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान या ईसाई। इसलिए बच्चोंके हृदयपर धर्म-भेदका छाप लगाना उचित नहीं। यही सब सोच कर मैंने उन चित्रोंको फिरसे उन किताबों में उसी प्रकार रख दिया, जैसे रहते थे।

कई अवसरों पर मैंने देखा कि बच्चे घरमें आकर मुझे या अपनी मां' को ईसामसीह और ईसाई धर्मके अन्य महापुरुषोंके जीवनकी बहुत-सी घटनायें सुनाया करते और अपने आप ही उनकी प्रशंसाभी करते। वह सब सुनकर मैं प्रसन्न होता कि बच्चोंके ज्ञानमें वृद्धिहो रही है तथा उनमें अच्छी और आदर्श बातोंके लिए प्रशंसाकी समझ पैदा हो रही है।

एकबार मुझे अपने एक मित्रके घर विवाह-समारोहमें सम्मिलित होना था। मैंने पत्नी और बच्चोंसे तैयार होनेको कहा। बच्चे वह वेशभूषा पहनकर मेरे सामने आये, जिसमें वे नित्य स्कूल जाया करते थे। मैंने उनसे बिगड़कर कहा—"ये स्कूलवाले कपड़े क्यों पहने ?' इस पर बच्चों ने कुछ इस प्रकार का मुँह बनाया, जिसका अर्थ यह था कि उन्हें वही वेश-भूषा बहुत प्यारी है। मैंने कहा—"जाओ, जल्दी बदलो अपने कपड़े।" बच्चोंने आपसमें एक दूसरेकी तरफ देखा और कहा—'हमारी टीचर कहती हैं—ये स्कूलवाले कपड़े हिन्दुस्तानी कपड़ोंसे अच्छे हैं और इनमें हम पढ़े लिखे दिखाई पड़ते हैं।'

बच्चोंके मुँहसे ये वाक्य सुनकर मुझे धक्का-सा लगा। ऐसा लगा, जैसे अनजानेमें धीरे-धीरे मुझसे कुछ छीना जा रहा है। मैं इसी उलझनमें खड़ा था कि क्या कहकर बच्चोंसे कपड़े बदलवाऊँ, कि इतने में ही श्रीमतीजी भी तैयार होकर आ निकलीं और कहने लगीं—चलो देर हो रही है।'

विवश होकर मैंने अपनी इच्छाके विरुद्ध बच्चोंको उसी पोशाकमें अपने साथ चलने दिया। रास्ते में एक गिरजाघर पड़ता था। उसे देखकर दोनों बच्चों ने अपने-अपने हाथोंसे अपने कँधों, छाती, और माथेको छूकर क्रास बनाया। ठीक उसी तरह, जैसे ईसाई लोग किया करते हैं।

मुझे तो जैसे बिच्छूने डंक मार दिया, सारा शरीर झनझना उठा। श्रीमती भी चौंकीं। मेरी समझमें न आया कि क्या करूँ ? मेरी लापरवाहीका अनुचित लाभ उठाया जा रहा था। मैं दूरदर्शी बनकर बच्चोंको सारे संसारके धर्मोंको एक समझने देनेकी छूट दे रहा था, वहाँ कच्चे हृदयोंको उनके धर्मसे विमुख किया जा रहा था। ऐसा करनेका किसीको क्या अधिकार है ? कोई धर्म यह नहीं कहता कि वे दूसरोंके कपड़ोंको यह कहकर छुड़ाने की कोशिश करें कि उनमें व्यक्ति अच्छा नहीं लगता, गँवार लगता है। अगर सचमुच ही उनके कपड़े और विचार ओरों से उत्तम हैं तो लोगोंको अपनी समझसे उन्हें चुनना और अपनाना चाहिये। बच्चोंको, जिन्हें अपना भला-बुरा समझनेका ज्ञान नहीं, जिन्हें मानव समाजकी एकताही समझानी चाहिये, यह सिखानाकि समाज एक नहीं, कई है और कई विशेष समाज अन्य समाजोंसे उत्तम हैं, कोई जाति धर्म विशेषही उत्तम है, दूसरे नहीं, यह सब गलत है, कानूनकी दृष्टिसे गलत है, मानवताकी दृष्टिसे भी गलत है, सब धर्मोंकी दृष्टिसे भी गलत

है। फिर वह अध्यापिका एक अनुचित काम क्यों कर रही है ? बच्चोंको अपने धर्मसे इतना ज्यादा विमुख कर दिया कि वे मन्दिरोंकी तरफ आँख उठाकरभी नहीं देखते और गिरजाघर को देखतेही श्रद्धासे क्रास बनाने लगे। अगर मेरे बच्चे बड़े होने पर अपनी समझसे किसी अन्यधर्मकी ओर झुकते हैं तो मुझे कोई शिकायत नहीं होगी। मगर इस उम्रमें उन्हें ऐसी सीख देना तो बच्चोंको बहकानेके बराबर है, जिसे कोईभी व्यक्ति सहन नहीं करेगा।

शादीमें सम्मिलित होनेकी सारी उत्सुकता और हर्ष जाता रहा। मैं मनहीमन इस चिन्तामें घुलने लगा कि क्या करूँ ? हृदय यह माननेको तैयार नहीं था कि यह सब चुपचाप अपनी आँखोंसे देखता रहूँ। मैं कायरोंकी श्रेणी में खड़ा होनेको तैयार नहीं था। मगर वीरता दिखानेके लिए भी मुझे क्षेत्र नहीं मिल रहा था।

इस समस्याको कैसे सुलझाया जाय, इसी उधेड़बुनमें दो तीन दिन निकल गये। मैंने बच्चोंसे अपने हृदयकी दशाका कोई जिक्र नहीं किया और चुपचाप उनके हर एक काम करनेकी विधिको संदेहकी दृष्टि से देखता-परखता रहा।

मैंने सोचाथा जातिप्रेम सिखाना गलत है, परन्तु जब न सिखाने से हानिका भयहो और अन्य लोग अनुचित ढंगसे इसका लाभ उठाने लगें, तब तो जातिप्रेम सिखाना ही चाहिए। लड़ाईको रोकनेके लिए लड़नाही चाहिए।

मैं बच्चोंको लेकर बाजार गया। अच्छेसे अच्छे कपड़ोंकी दुकान दिखायी। उनकी पसन्दके बहुतही भड़कीले रेशमी कपड़े खरीदे। दर्जीसे उनके लिए स्वदेशी ढंगके बहुतही आकर्षक कपड़े सिलवाये। फिर उन्हें पहनाकर उनसे पूछा, "अब बताओ, तुम्हारी स्कूलकी पोशाक अच्छी लगती है या यह ?"

बच्चे खुशीसे उछलकर बोले—"ये कपड़े सबसे अच्छे हैं और हम अब हमेशा ऐसे ही कपड़े पहना करेंगे।" यह सुनकर मेरे हृदयमें वह खुशी हुई, जो किसी सैनिक अधिकारी को पहली विजय पाने पर होती है। मेरा उत्साह और बढ़ा। बच्चोंको लेकर चित्रोंकी एक दुकान पर पहुँचा। वहाँ एक से एक चित्र सुन्दर चित्र लटके हुए थे। देवी-देवताओंके एकसे एक आकर्षक रंग-बिरंगे चित्र वहाँ मौजूद थे। शंकरकी जटाओंसे बहनेवाली गंगाभी थी तो शंकरको पानेके लिए घोर तपस्या करती हुई सौम्य रूपवाली पार्वती भी थी। गोपियोंकी मटकीसे चुराकर माखन खाते हुए बालकृष्णभी थे और रासलीलामें नाचते हुए शृंगार रस छिटकाने वाले कृष्ण भी थे। अमृत मंथन और सागरसे निकलनेवाली रूपमयी लक्ष्मीभी थीं और ज्ञानकी देवी सरस्वतीभी थीं।

चित्रोंको देख-देख कर बच्चे खुशीसे नाचने लगे। मैंने तुरन्त दुकानदारसे कहा कि उन सब देवी-देवताओंके चित्रोंको मूल्यवान फ्रेमों सहित बाँधकर दे दें।

मैं आर्यसमाजी विचारोंमें श्रद्धा रखनेवाला व्यक्ति उन देवी-देवताओंके चित्रोंको लेकर घर आया और घरके हर कमरेमें उन चित्रोंको दीवार पर सजाकर बच्चोंसे पूछा—"अब बोलो हमारे देवी-देवता कितने अच्छे लगते हैं !"

अपनी आदतके अनुसार बच्चे उछलतेहुए बोले—"ये तो सबसे अच्छे हैं। क्राइस्टको तो कीलें ठोक रक्खी हैं—मगर हमारे देवी-देवता तो जिन्दे जैसे लगते हैं और देखने में भी कितने प्यारे लगते हैं ! अब हम स्कूलवाली तस्वीरोंको किताबसे निकालकर फेंक देंगे।"

मैंने फौरन उन्हें रोका और समझाया कि उन तस्वीरोंको फेंकना नहीं चाहिए। वे भी अच्छे लोग थे।

उसके बाद मैं बच्चोंको लेकर नगरके सबसे बड़े मन्दिर में गया, जहाँ पहले कभी नहीं गया था। वहाँ शंकर भगवान्‌की बहुत बड़ी संगमरमरकी सौम्य मूर्ति सजी हुई है। मैंने उन पर सुगन्धित पुष्प चढ़ाये, धूपबत्ती जलायी, उपस्थित भक्तजनोंके साथ आरती गायी तथा अन्य कर्णप्रिय भजन भी सुने। प्रसाद लिया और प्रेमसे खाया।

बच्चोंको यह सब कुछ इतना अच्छा लगा कि जैसे उनके छोटे से जीवनमें कोई बहुत ही मधुर परिवर्तन हो गया हो। वे जितने खुश थे, उससे कहीं ज्यादा मैं खुश था, क्योंकि मेरे भटकते हुए बच्चोंको, भगवान्‌की प्रतिमासे अपनी राह मिल गयी थी।

विहग-गीत

आकाश नीड़ मेरा, बिस्तर जमीन है।
उसमें न भग्नता की,
दुख से भरी है चिन्ता,
इसमें न जीर्णताकी
चिन्ता भरी जटिलता,
प्राचीन से पुराना, नित से नवीन है।
नव रंग नीलिमा का,
उसमें ललित लसा है,
इसमें सुधा सा सुठितर,
अनुराग रस रसा है,
मनका मेरे बसेरा, मनके अधीन है।
उसमें अनन्तता के,
गौरव की कानि है,
इसमें अछोरता के
वैभवकी खानि है,
है हीन ताप-दुख से, सुख से अदीन है।
तारोंके तार उसमें,
छवि से मढ़े हुए हैं,
फूलोंके फल इसमें
अनुपम कढ़े हुए हैं,
सुषप्ति वह हमारी, यह गति प्रवीन है।

[आनन्द]

आत्मतत्त्वकी व्यापकतापर सरल और सुबोधपूर्ण मार्मिक चिंतन

"प्राणीमात्रमें आत्मा है, आत्मामें प्राणीमात्र हैं और वह आत्मा हम हैं, यह नितांत सत्य है। हम सत्य हैं, जन्म-जरा और मरणसे रहित हैं।"

'मैं कौन हूँ' ? प्रश्नका उत्तर

ब्र० मगनलाल हरिभाई व्यास

सब शरीरमें आत्मा है—यह जानकर जिन प्राणियोंसे भी सम्पर्क हो, उनका भलीभाँति दान-मानसे सम्मान करें, इस प्रकार आत्मोपासना करें। आत्मा कहें या परमात्मा, चेतन वस्तु एक और अखण्ड है तथा वह प्राणीमात्र के भीतर और बाहर व्याप्त है। ऐसा जानकर प्राणी मात्रको भगवान्‌की मूर्ति समझकर शास्त्रमें कहे अनुसार यथायोग्य सबकी भलीभाँति पूजा करे। जैसे गायकी पूजा चन्दन-पुष्पसे नहीं होती, बल्कि घास देकर उसकी पूजा की जाती है। इसी प्रकार भूखेकी पूजा उसको भोजन देनेसे और प्यासेकी पूजा जल पिलानेसे होती है। रोगीकी पूजा उसकी चिकित्सा तथा सेवा करके होती है। आश्रयहीनकी पूजा उसे आश्रय देकर की जाती है। देव-मूर्तिकी सेवा शास्त्र-विधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक पूजा करके होती है। इस साधनसे थोड़े समयमें ही आत्मदर्शन होता है। परन्तु जो कुछ करे, पूर्ण निष्काम-भावसे करे।

मैं देह हूँ—ऐसा मानकर हम सारा व्यवहार करते है। इसकी जगह "मैं आत्मा हूँ"—ऐसा मानकर सारा व्यवहार करे। प्राचीनकालमें संतजन शिष्यको यह बात दृढ़ करा देते थे कि तू इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं है, बल्कि तू सबसे परे असङ्ग चेतन आत्मा है। इसका भलीभाँति अभ्यास होता था और तदनुसार अभ्यास करते हुए आत्मज्ञान दृढ़ होने पर मनुष्य सारा व्यवहार जीवन्मुक्त दशामें रहकर करता था। इसी प्रकार सबको व्यवहार करना चाहिए। देह-स्वरूपके स्थानमें आत्मस्वरूप होकर शरीरसे सारी क्रिया करे और मनसे शान्त आत्मस्वरूपमें रहे।

जो कुछ यह दृश्य जगत् दिखलाई देता है, इस सबके बाहर और भीतर आत्मा है। प्राणीमात्रके शरीरमें आत्मा है। देव, दानव, मनुष्य, पशु-पक्षी सबमें आत्मा है। इसलिए सबको आत्मस्वरूप मानकर उनके साथ आत्मवत् व्यवहार करे। आत्माही अनेकरूप होकर सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो रहा है। आत्माके बिना कोई स्थान नहीं है। सारांश यह है कि आत्मा ही जगत् रूपमें भासित हो रहा है। इस बातका बुद्धि द्वारा भलीभाँति विचार करे।

जगत्‌में जो कुछ दिखलाई पड़ता है, सुनायी पड़ता है, या अनुभवमें आता है, वह सब पंचभूतोंसे बना है, यह बात ठीक है न ? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पंच-महाभूत कहलाते हैं, इन पंच महाभूतोंके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है । इहलोक या परलोक में इन पंचभूतोंसे न बना हुआ कोई पदार्थ नहीं है । पंच महाभूतोंमें अन्तिम पृथ्वीतल को लें, तो शास्त्र कहते हैं कि जल, तेज, वायु और आकाश —इन चार तत्त्वोंसे पृथ्वी तत्त्व बना है । इन चार तत्त्वोंसे पृथक् वस्तु पृथ्वी नहीं है । इसलिए वास्तविक चार तत्त्व हैं । इनमें जल तत्त्वको कहते हैं कि तेज, वायु और आकाशका परिणाम है । इन तत्त्वोंसे पृथक् जल नामका कोई तत्व नहीं है । रसायन शास्त्र भी कहता है कि हाइड्रोजन और अ.क्सीजनका मिश्रण जल है । अब रहे तीन तत्त्व—तेज, वायु और आकाश । इनमें कहते हैं कि तेज तत्त्व वायु और आकाशका परिणाम है । वायु (गैस) जलता है, इसका तो हम अनुभव भी करते हैं । अतएव वायु और आकाशके परिणामके सिवा पृथक् तेज-तत्त्व नहीं है । अब वायु और आकाश में आकाशसे वायु उत्पन्न होता है । अतएव वायु आकाशका परिणाम है और आकाश अमूर्त तत्व है तथा वह आत्मासे उत्पन्न होता है । अर्थात् मूल आत्मासे आकाश पहले उत्पन्न हुआ और इस क्रमसे सृष्टि हुई । अतएव सारा जगत् पंचतत्त्व रूप है और पाँच तत्त्व आत्मासे उत्पन्न हैं । आत्मासे पाँचों तत्त्वोंके उत्पन्न होनेके कारण आत्माके सिवा दूसरा कोई नहीं है । इस कारण आत्मा ही पाँच तत्त्वके रूपमें तथा इस आधार पर जगत्‌के रूपमें अपनी माया-शक्तिसे व्यक्त हो रहा है । आत्मा ही जगत् रूपमें आभासित हो रहा है । जैसे जल और 'बुद्बुद' पृथक् वस्तु नहीं हैं, बल्कि जलही वायुके कारण बुद्बुद्के रूपमें भासित होता है । इसी प्रकार आत्माही अपनी माया शक्तिसे जगत् रूपमें भासमान है; क्योंकि सृष्टिके आदिमें आत्माके सिवा और कोई वस्तु न थी । आत्मा कहें या परमात्मा, वस्तु एक ही है, जो अखण्ड है, अजर, अमर, अविकारी और अविनाशी है । प्राणी मात्रके भीतर और बाहर व्याप्त है। वह आत्मा मैं हूँ, इस प्रकारका चिन्तन करना नितान्त सत्य है । यह सहजही गलेसे नीचे नहीं उतरता, परन्तु आज या लाखों वर्ष आगे, यही केवल सत्य है—यह समझे बिना छुटकारा नहीं है ।

'मैं आत्मा हूँ'—इस बातमें आपको शंका होती है तो विचार दृढ़ करके बताइये कि यदि आप आत्मा नहीं हैं तो क्या हैं ? आप हैं—इसमें तो कोई शंका नहीं है ? मैं हूँ—यह अनुभव सबको होता है । "मैं नहीं हूँ"—ऐसा कोई नहीं कहता । इस जगत्‌में दो वस्तुयें हैं । एक आत्मा है—जो नित्य, अविकारी और अविनाशी है और दूसरा अनात्मा—जो दृश्य है, विकारी है और विनाशी है । किसी भी आग्रहसे मुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक बुद्धिसे विचार करके देखिये तो आपको ज्ञात होगा कि दृश्य जो विकारी और विनाशी है, वह 'मैं' नहीं हूँ । बल्कि 'मैं' द्रष्टा हूँ । आत्मा द्रष्टा है और जगत् दृश्य है । आत्मा द्रष्टा है और शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि दृश्य है । आत्मा इनका अनुभव करता है, आत्माका अनुभव ये नहीं कर सकते ।

पुनर्जन्मके सिद्धांतानुसार कर्मके फलाफलकी पौराणिक व्याख्या

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

कर्म-वृक्षके कटु-तिक्त फल

श्रीपरमहंसजी महाराज

मनुष्य अपने जीवनमें क्षणिक सुखके लिए नाना प्रकारके दुष्कर्म करता है। उसे यह ज्ञात नहींकि इन दुष्कर्मोंका फल उसे अवश्यमेव किसी-न-किसी प्रकारसे भोगनाही पड़ेगा। मनुष्यको जीवनमें नानाप्रकारके जो दुःख उठाने पड़ते हैं, वे उसके पूर्वकृत कर्मोंके ही फल हैं। मनुष्यकी अज्ञानसे पापमें प्रवृत्ति होती है। इससे होनेवाली हानियोंको वह नहीं समझता। अज्ञानसे ही जीव नरकमें पड़ता है, अज्ञानसे ही उसकी बुरीगति होती है तथा अज्ञानसे ही वह दुःख भोगता है और आपत्तियोंमें फँसता है।

पापकर्म

जीवहिंसा, मदिरा-पान, तथा ब्रह्महत्या यह सब महापाप हैं। दूसरेका सोना हड़प लेना, चोरी करना, ब्राह्मण, गौ, साधु, और रोगीका धन छीन लेना—यह सभी महान् पाप हैं। जिसके पास कोई आजीविका नहीं है, ऐसे दीनको भिक्षा देनेके लिए लाकर जो फिर देनेसे अस्वीकार कर देता है, वह ब्रह्महत्याके समान पाप करता है। जो ब्राह्मण, देवस्थान, साधु और अनाथ अबलाकी आजीविकाका अपहरण करता है, वहभी ब्रह्म हत्याराही है। जो प्यासी गौओंको पानी पीनेमें विघ्न डालता है, उसेभी ब्रह्महत्याराही समझना चाहिए। श्रुतियों और ऋषि-प्रणीत शास्त्रोंपर विना समझे-बूझेही जो व्यक्ति दोषारोपण करता है, वहभी ब्रह्म हत्याराही माना गया है। जो मनुष्य अपनी रूपवती वयस्का कन्याका योग्य वरके साथ विवाह नहीं करता, उसे ब्रह्म हत्याका पाप लगता है। जो मनुष्य ब्राह्मण, साधु आदि को व्यर्थही मर्म भेदी वचन-वाणोंसे वेधता है, जो अन्धे, लूले, गूँगे और प्रसूतिका सर्वस्व हरण कर लेता है, तथा जो नगर, आश्रम, वन, गाँव और घरमें मोहवश आग लगा देता है, उसे ब्रह्मघातीही समझना चाहिए। झूठी गवाही देना महापाप है। विष देना बड़ा पाप है, भ्रूण हत्या महापाप है। बालककी हत्या महान् पाप है। जो माता-पिता, गुरु और साध्वी स्त्रीका परित्याग करता है, वह अतिपापी है। देवमूर्तिको तोड़नेसे मनुष्य देव हत्यारा कहलाता है। बिल्ली, पक्षी, मेंढ़क, साँप, चूहा और गिरगिट आदि जीवोंकी अनायासही हत्या करनेसे पशुहत्यारा कहलाता है। कीड़े-मकोड़े, मच्छर मक्खी, उल्लू इत्यादि छोटे-छोटे जीवोंका

अनायासही वध करनेवाला जीवहत्यारा कहा जाता है। पूज्य महापुरुषोंको 'तू' कहना महान्-पाप है। अतिथिका आतिथ्य न करनेसे पाप लगता है। विश्वासघाती महापापी कहा गया है।

मानसिकी, वाचिकी और शारीरिक असंख्य प्रकारके पाप हैं, जो मनुष्यसे होते ही रहते हैं।

पापका परिणाम

कुछ लोग यह तर्क करते हैं कि मनुष्य जब मर जाता है, तब उसका शरीर तो यहीं छूट जाता है, फिर पाप-कर्मोंके परिणाम फल-भोगोंको कौन भोगता है? इसका उत्तर यह है कि सुख दुःखादिका जितना प्रभाव मन और प्राण पर पड़ता है, उतना शरीर पर नहीं पड़ता। मृत्युके पश्चात्‌भी मन और प्राणतो रहते ही हैं। पार्थिव शरीर छूटने पर जीवको यातना-देह प्राप्त होता है। उसे यातना शरीर इसलिए कहते हैं कि वह इसी प्रकारके उपादानोंसे बना होता है। वह केवल यातना-भोगके लिये ही होता है। जलती हुई आगमें दग्ध होने परभी उसका नाश नहीं होता। वह नरककी यन्त्रणाओं का भोग करता रहता है।

पाप कर्मोंके अनुसार असंख्य नरक यातनायें हैं। कुल ८८ नरक हैं। उनमेंभी २८ अधिक भीषण हैं। दुष्कर्मोंके फलानुसारही जीवको नरकमें पड़ना पड़ता है। कर्मोंके शेष फलको अन्य तिर्यक् योनियोंमें भोगना पड़ता है।

जो द्विज वेदाध्ययी होकरभी मोहवश पतितोंसे दान लेता है, वह गधेकी योनिमें सातवर्ष रहकर मृत्युको प्राप्त होता है। फिर सात वर्ष बैलकी योनिमें रहकर पश्चात् तीन महीनेके लिये ब्रह्मराक्षस होता है। पुनः ब्राह्मणका जन्म पाता है। लोभवश यज्ञ संपादन करनेपर ब्राह्मण मृत्युके पश्चात् पन्द्रहवर्ष कीड़ा, पाँच वर्ष गधा, पाँच वर्ष सुअर, पाँच वर्ष मुर्गा, पाँच वर्ष श्रृगाल, और एक वर्ष कुत्तेकी योनिमें रहकर अन्तमें मनुष्यका शरीर पाता है। जो शिष्य गुरुके प्रति अपराध करता है, वह पहले कुत्ता, फिर राक्षस, फिर गधा और फिर वाताहारी प्रेत होकर अन्तमें ब्राह्मण होता है। जो शिष्य गुरुकी पत्नीके साथ छल करता है, वह नरक भोगनेके पश्चात् ३० वर्ष कुत्तेकी योनिमें रहकर १३ वर्ष कीड़ेकी योनिमें रहता है। तत्पश्चात् १ वर्ष नीलगायकी योनिमें रहकर ब्राह्मणयोनिमें उत्पन्न होता है। यदि गुरु बिना कारणके ही शिष्यको क्षति पहुँचाता है, तो वह हिंसक पशुओंकी योनिमें जन्म लेता है। जो पुत्र अपने माता-पिताका अनादर करता है, वह मरनेके पश्चात् गधा होकर पन्द्रह वर्ष पश्चात् मृत्युको प्राप्त होता है। फिर पाँच वर्ष पश्चात् घड़ियालकी योनि में जन्म लेता है। चौदह मास कुत्ते और सात मास बिलाव योनिमें जन्म लेकर तत्पश्चात् मनुष्य योनि प्राप्त करता है। माता, पिता. और गुरुजनोंको अपशब्द कहनेवाला मैना होता है। उन्हें आघात पहुँचानेवाला पुत्र दशमास कछुआ, तीन वर्ष साही, और छः महीने साँपकी योनिमें जन्म लेकर फिर मनुष्यरूपमें जन्म लेता है। जो मनुष्य राजाका अन्न खाकर उसके शत्रुओं का साथ देता है, वह मृत्युके पश्चात् दस वर्ष बानर, पाँच वर्ष चूहा, छः महीने कुत्ता होकर फिर मनुष्य योनिमें जन्म लेता है। दूसरोंकी धरोहर हड़पलेनेवाला मनुष्य यमलोकमें नरक दुःख भोगकर, १५ वर्ष कीड़ेकी योनिमें रहकर पुनः मनुष्य होता है। पर दोषान्वेषण करने वाला हिरण की योनिमें जन्म लेता है। जो अपनी दुर्बुद्धिके कारण दूसरोंके साथ विश्वासघात करता है, वह आठ वर्ष मछली, और चार मास तक हिरण होता है। जो मनुष्य

धान, जौ, तिल, उड़द, सरसों, गेहूँ आदि अनाजोंकी चोरी करता है, वह मृत्युके पश्चात् चूहा, सुअर और कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है। उक्त योनियोंमें भी रोगी होकर मरणको प्राप्त होता है। अन्तमें मनुष्य शरीर पाता है। परस्त्री समागमके परिणामस्वरूप मनुष्य भेड़िया, कुत्ता, शृगाल, गीध, बगुला और साँप होता है। जो मनुष्य भाईकी स्त्री पर आसक्त होता है, तथा मित्र, राजा और आचार्यकी पत्नीके प्रति कुचेष्टा प्रकट करता है, वह मृत्युके पश्चात् सुअर, भेड़िया, बिच्छू तथा कीड़ाकी योनिमें ५-५ वर्ष रहकर मनुष्य जन्म धारण करता है और क्लीव होता है। पर्व, विवाह, यज्ञ, संकीर्तन, कथा और दानमें जो विघ्न डालता है, वह पन्द्रह वर्षों तक कीड़ेकी योनिमें रहकर अजगर होता है, पश्चात् मनुष्य-देह प्राप्त होती है।

जो मनुष्य अपनी कन्या एक व्यक्तिको प्रदान करके पश्चात् दूसरेको कन्यादान करता है, वह मरकर तेरह वर्ष कीड़ेकी योनिमें रहता है, अनन्तर मनुष्य होता है। जो व्यक्ति देव-यज्ञ, पितृयज्ञको पूर्ण किये बिना अन्न ग्रहण करता है, वह मृत्युके पश्चात् सौ वर्षों तक कौए की योनिमें पड़ा रहता है। तत्पश्चात् क्रमशः मुर्गा, साँप, छिपकली, कीट पतङ्गादि योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें मनुष्य जन्म पाता है। जो बड़े भाईका अनादर करता है, वह मृत्युके पश्चात् क्रौञ्च पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है, पश्चात् चीरक पक्षीकी योनिमें जन्म लेकर पुनः मनुष्य जन्म धारण करता है। ब्राह्मण कुलोत्पन्न जो मनुष्य शूद्रकी स्त्रीके साथ संपर्क स्थापित करता है, मरणके पश्चात् वह सुअर होकर रोगी रहता है। तत्पश्चात् कुत्तेकी योनिमें जन्म लेकर भी रुग्ण रहता है। फिर शूद्र जातिमें मनुष्य शरीर धारण करता है। कृतघ्नी मनुष्य विभिन्न नरकोंमें कष्ट झेलकर पन्द्रह वर्ष कीट पतङ्गादि योनिमें जन्म लेकर सैकड़ों बार गर्भमें आकर नष्ट होता है। शहदकी चोरी करनेवाला डाँस होता है। फल फूलादिकी चोरी करने वाला चींटीकी योनिमें जन्म लेता है। खीरकी चोरी करनेवाला तीतर और पूएकी चोरी करने वाला उल्लू होता है। जो पुरुष स्त्रीकी हत्या करता है, वह मृत्युके पश्चात् बीस वर्ष कीट पतङ्गादि योनिमें रहकर पश्चात् शूद्रयोनिमें जन्म लेता है। घी चुरानेवाला नकुल योनिमें जन्म लेता है। नमककी चोरी करनेवाला चिड़िया होता है। तेलकी चोरी करनेवाला तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। चाँदीकी चोरी करनेवाला शंखका कीड़ा बनता है। सोनेकी चोरी करनेवाला शालिग्राम शिलाका कीड़ा बनता है। गौ, ब्राह्मण, और पूज्यपादोंपर पदसे प्रहार करनेवाला लूला बनता है। झूठी गवाही देनेवाला गूंगा बनता है। पर स्त्री पर कुदृष्टि रखनेवाला काना होता है। सज्जन पुरुषों पर दोषारोपण करनेवाला उन्मत्त होता है। दान देकर पुनः लेनेवाला गिरगिटकी योनिमें जन्म लेता है। देव गुरु और शास्त्रकी निंदा करनेसे दादुरका सहस्रबार जन्म लेना पड़ता है। सन्तोंकी निंदा करनेवाला उल्लूकी योनिमें जन्म लेता है। दोषान्वेषण और पर निन्दा करनेवाला चमगादड़की योनिमें जन्म लेता है।

इस प्रकार मनुष्य पाप कर्म करके तिर्यक्‌योनियोंमें जन्म लेता है। इन योनियोंमें उसे अपने उद्धारके लिये धर्मका किंचित् भी ज्ञान नहीं रहता। पर मनुष्य योनिमें वह दुःखसे छुट-कारेके लिये प्रयत्न करता है। मनुष्य योनि में जो मनुष्य लोभ और मोहके वशीभूत होकर पाप-कर्म करके उसे व्रत आदिके द्वारा धोना चाहता है, वह सदा सुख दुःख भोगता हुआ पीड़ित और चिन्तित ही रहता है। उसे कहीं निश्चिन्तताका ठौर नहीं मिलता। जो मनुष्य जन्मसे ही पापका परित्याग करता है, वह नीरोग, आयुष्मान, धनवान, और रूपवान होता है।

मनुष्य देह कर्मका साधन है। मनुष्य लोक मुख्यतः कर्मलोक कहलाता है। मानवलोक में दुःख प्राप्त होता है, पर वह कितना ही अधिक होनेपर भी उस दुःखसे तो कम ही है, जिस दुःखकी पूर्णताके लिये मनुष्यको मृत्युके पश्चात् भोग-देह प्राप्त होता है।

भोगदेह दो प्रकारका है। एक वह देह, जिससे सत्कर्मके फलस्वरूप स्वर्गादि भोग भोगना पड़ता है और दूसरा वह, जिससे दुष्कर्मके फल स्वरूप नाना प्रकारकी यन्त्रणायें भोगी जाती हैं।

कर्म और उसके फल किसी वृक्षके बीज और फलके समान ही हैं। इनका परस्पर सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता। यातनादेहसे दुष्कर्मोंके फल भोगके पश्चात् ही नरकसे उद्धार होता है, फिर नया जन्म होता है। वह नया जन्म यदि मनुष्य जन्म है, तो पूर्व कर्मोंके शेष फलको मनुष्य शरीरमें भोगते हुए उसे मनुष्य देहमें विवेक वैराग आदि साधनोंके द्वारा अपनेको सुधारनेका अवसर मिलता है। शास्त्रोंमें यही उपदेश मिलता है कि पूर्वजन्मार्जित कर्म फलको अपने ही कर्मोंका फल-भोग जानकर मनुष्यको जन्म मरणके आवागमनसे छूटनेके लिये सत्कर्म करना चाहिये। सत्कर्मोंसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि संभव है, अन्तःकरणकी विशुद्धतासे ही ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञानसे ही अज्ञानका विलय होता है और आत्मानुभूतिको प्राप्तकर जीव मोक्षको प्राप्त हो जाता है।

मैं आत्मा हूँ

तुमको यह शंका होती हो कि तुम आत्मा नहीं, जीव हो, तो शरीरमें जीव नामकी कोई जान नहीं पड़ती। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्राण—ये शरीरसे क्रिया करते हैं और ये भी परमात्माके सामीप्यसे अपना-अपना काम करनेमें शक्तिमान होते हैं, प्राणीमात्र के शरीरमें परमात्मा तो हैं ही। परमात्मा न हों तो आँखें देख न सकें, कान सुन न सकें, पैर चल न सकें, हाथ लेने-देनेका काम न कर सकें, मन संकल्प न कर सके, बुद्धि निश्चय न कर सके, और प्राणका श्वासोच्छ्वास न चले। सबके हृदयमें परमात्मा विराजते हैं। उनकी सत्तासे यह सब चलता है, ब्रह्माण्डकी प्रत्येक क्रिया उनकी सत्तासे होती है। सबके हृदयमें आत्मा रूपमें वही बसे हैं। उनके सिवा जीव नामकी दूसरी कोई चीज नहीं है। शास्त्र कहते हैं कि बुद्धि में आत्मा या परमात्माका जो प्रतिबिम्ब है, वही जीव है अथवा वही चिदाभास कहलाता है। यह प्रतिबिम्ब कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, स्वतन्त्र वस्तु तो बिम्ब है। पानी या दर्पणमें अपनी छाया पड़ती है, यह छाया कोई व्यक्ति नहीं। छाया अपने बिम्बसे पृथक् व्यवहार नहीं कर सकती। छाया आभास मात्र है, सच्चा तो बिम्ब या व्यक्ति है। इसी प्रकार शरीरमें सच्चा तो आत्मा या परमात्मा ही है तथा जीव अथवा चिदाभास, यह कोई भी वस्तु नहीं है। अतएव जीव सत्य नहीं है। बल्कि आत्मा सत्य है और वह आत्मा तुम हो। प्रत्येक प्राणीके अन्तःकरणमें परमात्मा ही आत्मारूपमें विराज रहा है। तुम आत्मा हो, यह निश्चय है। यह तुरन्त समझमें नहीं आता, परन्तु निष्काम भावसे भगवान्की भक्ति करने पर भगवान्की दयासे विचार करते-करते यह सत्य समझमें आ जायगा।

तुमको यह सत्य जान पड़े या न जान पड़े, परन्तु व्यवहारमें इतना तो करो ही कि तुम्हारे आचरणसे तुम और तुमसे दूसरे सुखी हों और तुमको स्वयं आत्मदर्शन हो। आत्मा अपने और प्राणीमात्रके हृदयमें विराज रहा है। सबका आत्मा एक है, इसलिये किसीका अपमान न करो और किसीको अपनेसे तुच्छ न समझो, किसीको अप्रिय बात न कहो, किसीको धोखा मत दो तथा किसीके साथ कपट व्यवहार न करो।

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान—कोटि-कोटि हिन्दुओंका प्राण-तीर्थ

"श्रीकृष्ण भगवान्‌की अनुकम्पा और प्रेरणासे जन-जनके हृदयसे जिस प्रकार श्रद्धा और आकर्षणका स्रोत फूट रहा है, उसे देखते हुए बिना किसी संकोचके यह कहा जा सकता है कि वह दिन दूर नहीं, जब श्रीकृष्ण जन्म-स्थान धरतीका एक ऐसा केन्द्र बनेगा, जहाँ विश्वके सम्पूर्ण मानव-हृदयकी श्रद्धा, वास्तविक रूप में उमड़कर बहा करेगी।"

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी गतिविधियाँ

श्रीवंशीधर उपाध्याय

सम्पूर्ण विश्वमें श्रीकृष्ण जन्म-स्थान ही एक ऐसा पवित्र और दिव्य स्थान है, जो विश्वके सम्पूर्ण मनुष्योंको अपनी ओर आकर्षित करता है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अँग्रेज, जर्मन, अमेरिकन और रशियन इत्यादि धर्मों और देश-देशान्तरोंके मनुष्य प्रतिदिन श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें आते हैं और अपने विभोर प्राणोंसे श्रीकृष्ण भगवान्‌के चरणोंमें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं तथा श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके रजिस्टरमें, अपनी भावभीनी सम्मतियाँ भी लिख जाते हैं। इस सर्व मानवी आकर्षण और श्रद्धाका एक महान् कारण है। वह महान् कारण है 'गीता'—मानव जीवनकी समस्त दुरूह गुत्थियोंको सुलझानेवाली गीता। 'गीता' ने अपने 'ज्ञान' और अपने संदेशके 'गुरुत्व'से, विश्वके सम्पूर्ण मनुष्योंको कल्याणके लिए एक ही धरातलपर एकत्र होनेके लिए प्रेरणा प्रदान करती है। फिरतो यह स्वाभाविक ही है कि गीताके गायक, जगद्‌गुरु श्रीकृष्ण भगवान्‌के जन्म-स्थानके प्रति सम्पूर्ण मानव हृदयमें श्रद्धा और आकर्षणका स्रोत फूटे। श्रीकृष्ण भगवान्‌की अनुकम्पा और प्रेरणासे जन-जनके हृदयसे जिस प्रकार श्रद्धा और आकर्षणका स्रोत फूट रहा है, उसे देखते हुए बिना किसी संकोचके यह कहा जा सकता है कि वह दिन दूर नहीं, जब श्रीकृष्ण जन्म-स्थान धरतीका एक ऐसा केन्द्र बनेगा, जहाँ विश्वके सम्पूर्ण मानव-हृदयकी श्रद्धा, वास्तविक रूपमें उमड़ कर बहा करेगी।

मथुराको इस बातका गर्व है कि श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान उसके अंचलमें है। मथुरा श्रीकृष्ण-जन्म स्थानके गौरव और पावनतासे ही गौरवित और सुपावन है। मथुराकी धार्मिकता और सांस्कृतिकताके शरीरमें, श्रीकृष्ण जन्म-स्थान प्राणके ही समान विराजमान हैं। ज्यों-ज्यों श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान अपने वास्तविक रूपमें अस्तित्वमें आयेगा, त्यों-त्यों मथुराकीही शोभा और उसके अभ्युदयमें पंख नहीं लगेंगे, अपितु समस्त भारतमेंभी सुख और शान्तिके शुभ्र

आलोकके दर्शन होंगे। यह दुर्भाग्यकी ही बात थी कि श्रीकृष्ण जन्म स्थान अभी तक मानवी निर्माणकरणकी दृष्टिसे वंचित था। वे महान् पुरुष वंदनीय और अर्चनीय हैं, जो श्रीकृष्ण जन्म-स्थानको नवीन और दिव्य रूपमें लाने का सुप्रयत्न कर रहे हैं। महामना मालवीयजी और ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर बिरला केवल हिन्दुओंके ही नहीं, मानव मात्रके श्रद्धाके भाजन हैं, जो श्रीकृष्ण जन्म स्थानको नए रूपमें अस्तित्वमें लाकर एक अनुपम आदर्श छोड़ गए। श्रीजयदयाल डालमिया आदि महान् पुरुषभी वन्दनीय हैं, जो श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके नवनिर्माण को एक पवित्र साधना समझकर उसमें रत हैं और बड़े आनन्द तथा सुखका अनुभव कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान जबसे नए रूप में अस्तित्वमें आया है, मानवी श्रद्धा और प्रेमकी गतिविधियोंका केन्द्र बनता जा रहा है। श्रीकृष्ण जन्म-स्थानमें प्रतिदिन सैकड़ों-सहस्रों मनुष्य आते हैं और मन्दिर में प्रतिस्थापित भगवान्के बाल-विग्रहका पुण्य दर्शन करके विभोर हो जाते हैं। जन्म-स्थानका गर्भ-गृह दर्शनार्थियोंकी उत्कण्ठा और उत्सुकतामें पंख लगा देता है और वे श्रीकृष्ण जन्मस्थानका युगोंका प्राचीन इतिहास जाननेके लिए व्यग्र हो उठते हैं। दूसरी ओर जब वे विशाल भागवत भवनके निर्माण कार्यको देखते हैं, तो उनके प्राणोंमें श्रद्धा बरस पड़ती है। श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके रंगमंच पर होनेवाले उत्सव और समारोह तो यात्रियों तथा दर्शनार्थियोंके प्राणोंको बाँध लेते हैं।

श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके रंगमंच पर आये दिन उत्सवों और समारोहोंकी धूमसी रहती है। कभी रामलीला, कभी श्रीकृष्णलीला, कभी चैतन्य लीला, कभी श्रीमद्भागवत्की कथा और कभी संकीर्तन। प्रतिदिन प्रातःकाल होते ही गर्भ-गृहसे प्रार्थना और संकीर्तनकी पवित्र स्वरावली निकलकर दूर-दूर तक आकाशमें गूँज उठती है और फिर उसके पश्चात् ही गोस्वामि पाद् श्रीमन्माध्व गौड़ेश्वराचार्य श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजके मुखसे निकली हुई श्रीमद्भागवत्की कथा प्राणोंमें अमृतरस उँडेलने लगती है। प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण-जन्मस्थान कथा, संकीर्तन और प्रार्थनासे धरतीका एक दिव्यलोक बन जाता है।

विजयोत्सव

आश्विन शुक्लके प्रारम्भसे ही श्रीकृष्ण जन्मस्थानके रंगमंचपर रामलीलाकी तैयारी आरम्भ होने लगी। २४ सितम्बरसे श्री रामचरित मानसके आधार पर, भगवान् श्रीरामचन्द्र की पवित्र लीला प्रारम्भ हो गई। प्रतिदिन सायंकालके पश्चात् श्रीकृष्ण जन्म-स्थान विद्युत-बल्वोंके आलोकसे विहँस उठता था। लीलाके पात्रोंके स्वरोंसे आकाश छा जाता था। दर्शकों, भक्तों और प्रेमियोंकी भीड़से, जन्म-स्थानकी धरतीका गोद खचाखच भर जाता था। यों तो प्रतिदिन ही अपार भीड़ होती थी, पर धनुष यज्ञके दिन तो ऐसा लगा, मानो सारी मथुरा ही श्रद्धा और प्रेमके रूपमें एकत्र हो गई हो। झाँकियाँ बड़ी भव्य और बड़ी सुन्दर। दृश्य, वार्तालाप और अभिनय भी बड़े मोहक! ऐसा लगा, मानो व्रजकी यह अपनी ही कला हो। व्रजमें विजयोत्सवकी यह सिद्धता उसके सांस्कृतिक और कलात्मक गौरवका प्रतीक बनकर रहेगी और इसका श्रेय है श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके उस रंगमंचको, जिसने अस्तित्वमें आकर व्रज की 'कला' और अभिनय-प्रेम में पंख लगा दिए हैं।

रामलीलाका प्रारंभ जिस प्रकार श्रद्धा और भक्तिके साथ उल्लासपूर्ण वातावरणमें

हुआ था, उसी प्रकार उसका समापन भी राज्याभिषेकोत्सवकी आनन्दमयी घड़ियोमें हुआ। राज्याभिषेकोत्सवके अवसरकी भगवान्‌की दिव्य झाँकीने दर्शकोंके हृदय-पटल पर वास्तविकता का चित्र अङ्कित कर दिया। अपनी जय ध्वनिके रूपमें दर्शकोंने अपनी आनन्द-विह्वलता ही नहीं प्रकट की, अपितु कहना होगा कि उन्होंने रामलीलाके आयोजकों और कार्यकर्ताओंको भी धन्यवाद दिया।

गोवर्द्धन-परिक्रमा

रामलीलाके दिनोंमें ही दिल्लीके एक अत्यन्त सुधी और भक्त-प्रवर तथा जन्मस्थान सेवा संघके सम्मानित सदस्य सदस्य मथुरा आ गए थे। वे प्रतिदिन गर्भ-गृहमें चलनेवाली श्रीमद्‌भागवत कथा और प्रार्थना सभामें भाग तो लेते ही थे, रातमें रामलीला भी बड़े चावसे देखते थे। उन्हींकी प्रेरणासे गोवर्द्धन-परिक्रमाकी योजना भी बनाई गई। उन्होंने तथा संघके उप-सचिव श्रीदेवधर शर्माजी ने बड़ी रुचि ली। उन्होंने मथुरा और वृन्दावनके प्रेमियों तथा भक्तोंको परिक्रमाके लिए तैयार तो किया ही, दिल्ली और दूसरे कई स्थानोंके प्रेमियोंको भी परिक्रमाकी मंडलीमें सम्मिलित होने के लिये निमंत्रित किया। परिक्रमाके मार्गमें चैतन्य लीलाकी भी संयोजना की गई। परिणामतः श्रीकृष्ण जन्म-स्थानपर गोवर्द्धन परिक्रमाको लेकर उत्सुकता और उमङ्गसे भरा हुआ एक सुन्दर वातावरण सा उत्पन्न हो उठा।

१५ अक्टूबरको प्रातःकाल पौ फटते ही, पूर्व योजनाके अनुसार श्रीमन्माध्व गौड़ेश्वराचार्य श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजके नेतृत्वमें, जय ध्वनिके साथ परिक्रमा मण्डली परि-क्रमाके लिए बसों पर चल पड़ी। मार्गभर जयध्वनि और कीर्तनकी स्वरावलियाँ गूँजती रहीं और गूँज-गूँजकर मार्गके अन्यान्य यात्रियोंको भी आनन्द-विभोर बनाती रहीं। गोवर्द्धन में जयध्वनिके साथ ही मण्डली बसोंसे उतरी और परिक्रमा प्रारम्भ हो गई। वह परिक्रमा! सचमुच आनन्द, उमंग और प्रेमकी ही परिक्रमा थी। मन-मन में, प्राण-प्राणमें आनन्द ही आनन्द दृष्टिगोचर हो रहा था। युवकों और प्रौढ़ोंके पैर तो थिरक ही रहे थे, वृद्धोंके पैर भी थिरकनेके लिए मचले पड़ रहे थे। पूँछड़ीमें विरामका प्रबन्ध था। पूँछड़ी पहुँचनेपर सुमधुर भोजन मिला और फिर उसके पश्चात् ही चैतन्य लीला प्रारम्भ हो गई। चैतन्य लीलाने परिक्रमा-मण्डलीके सभी श्रद्धालुजनोंको विमुग्ध कर लिया। कई अवसरों पर लोगोंकी आँखें सजल हो उठीं। रातमें गोवर्द्धन पहुँचनेपर पुनः चैतन्य लीला हुई, जिसने मन पर ही नहीं, प्राणोंपर भी अपनी छाप डाल दी। दूसरे दिन १६ अक्टूबरको शेष परिक्रमा को पूर्ण करके, मण्डली सानन्द मथुरा वापस आगई। गोवर्द्धन की इस परिक्रमामें जो लोग सम्मिलित थे, कदाचित् ही कभी उनके मनसे उसके रसमय आनन्दका विस्मरण हो सकेगा।

श्रीकृष्णलीला

गोवर्द्धन-परिक्रमाके पश्चात् ही, शरद्‌पूर्णिमा की रातसे श्रीकृष्ण जन्म-स्थानका रंग-मंच श्रीकृष्णलीलासे मुखरित हो उठा। श्रीकृष्ण जन्म-स्थानकी धरती पुनः रातमें विद्युत-वल्वोंकी ज्योतिसे हँसनेके साथ ही साथ श्रीकृष्ण भगवान्‌की जय ध्वनिसे गुंजित होने लगी। प्रथम दो दिनों तक महारासका अभिनय हुआ, जिसने दर्शकोंको आत्मविभोर कर दिया। श्रीकृष्ण जन्म, शंकर लीला और माखन चोरी प्रभृति श्रीकृष्ण-कथा लीलाओंने दर्शकोंके मन

पर सदा-सदाके लिये अपनी छाप डालदी। इन पंक्तियोंके लिखनेके समय श्रीकृष्ण लीला चल रही है। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षमें श्रीकृष्ण लीलाके साथ ही साथ चैतन्य लीला भी होगी, जिसकी प्रतीक्षा अभीसे लोग बड़ी उत्सुकताके साथ कर रहे हैं।

श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा

श्रीकृष्ण लीलाके साथही साथ २३ अक्टूबरसे सम्मान्य सेठ श्रीजदयाल डालमियाकी सुपुत्री श्रीमती उमादेवी केजरीवाल की ओरसे श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथाका पवित्र आयोजन श्रीकृष्ण जन्मस्थानके रंगमंचपर किया गया। प्रातःकाल श्रीमद्भागवतकी कथा और रातमें श्रीकृष्णलीला ! इस प्रकार श्रीकृष्ण जन्म-स्थान रंगमंचने भक्तिके एक साकार रूपको धारण कर लिया। वृन्दावनके मूर्द्धन्य विद्वान् पंडित श्रीनाथ शास्त्रीजी महाराजने अपनी प्रभावपूर्ण वाणीसे श्रोताओंके मनको विमुग्ध ही नहीं कर लिया, वरन् उनके प्राणोंको श्रीमद्भागवतके अलौकिक रससे अभिषिक्त कर दिया। सहस्रों लोगोंने श्रीमद्भागवतकी अमृत कथासे लाभ उठाकर, श्रीमती उमादेवी केजरीवालके प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित की।

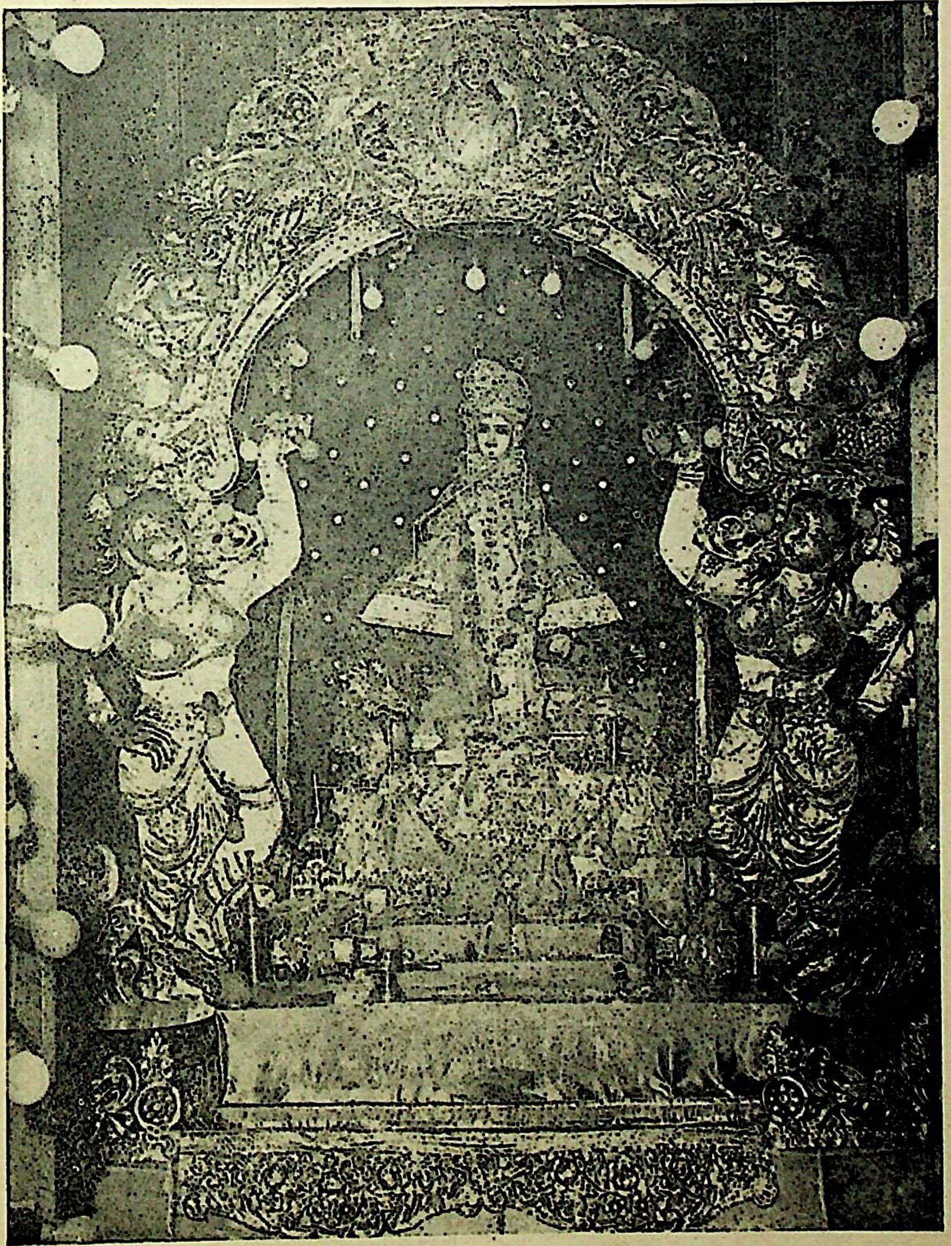
श्रीकृष्ण जन्म-स्थान इसी प्रकार श्रद्धा, प्रेम और भक्तिके सपूतोंके प्रयासों तथा साधनाओंसे सदा मुखरित और प्राणवान् बना रहता है। जो भी श्रीकृष्ण जन्म-स्थानपर आता है, वह उसकी जागरूकताको देखकर विमुग्ध हुए बिना नहीं रहता। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि श्रीकृष्ण जन्म-स्थानकी इस जागरूकताके मूलमें केवल भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा और उनकी अनुकम्पा ही है।

❀श्रीमद्भागवतकी कथाका महत्त्व❀

'श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे बनी है। इसलिए उनसे अलग उनकी फलरूपा होनेके कारण यह बड़ी उत्तम जान पड़ती है। जिस प्रकार रस वृक्षकी जड़से लेकर शाखाग्र पर्यन्त रहता है, किन्तु इस स्थितिमें उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; वही जब अलग होकर फलके रूपमें आजाता है तब संसारमें सभीको प्रिय लगने लगता है। दूधमें घी रहता ही है किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता; वही जब उससे अलग हो जाता है, तब देवताओंके लिए भी स्वादवर्धक हो जाता है। खांड़ ईखके ओर-छोर और बीचमें भी व्याप्त रहती है, तथापि अलग होने पर उसकी कुछ और ही मिठास होती है। ऐसी ही यह भागवतकी कथा है। यह भागवत पुराण वेदोंके समान है।

श्रीमद्भागवत कथाके श्रवण मात्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा-सर्वदा सेवन, आस्वादन करना चाहिए। इसके श्रवणमात्रसे श्रीहरि हृदयमें आ विराजते हैं। जीव तभी तक अज्ञानवश इस संसार चक्रमें भटकता है, जब तक क्षणभरके लिए भी कानोंमें इस शुक शास्त्रकी कथा नहीं पड़ती। जिस घरमें नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह तीर्थ रूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।'

[श्रीकृष्ण जन्मस्थानमें सम्मान्य सेठ श्रीजयदयाल डालमियाकी सुपुत्री श्रीमती उमादेवी केजरीवाल द्वारा आयोजित श्रीमद्भागवतकी सप्ताह कथाके उद्घाटनावसरपर गोस्वामीपाद श्रीमन्माध्व गौड़ेश्वराचार्य श्रीपुरुषोत्तम महाराजजीके द्वारा हुए प्रवचनका भावांश।]



जन्मस्थानके मन्दिरमें प्रतिष्ठापित भगवान् श्रीकृष्णका बाल-विग्रह

श्रीकृष्ण-सन्देश के कृपालु ग्राहकोंसे

सहयोगकी प्रार्थना

महानुभाव,

आपने "श्रीकृष्ण-सन्देश" को प्रारम्भसे ही जो प्यार प्रदान किया है, उसके लिये हम आपके बड़े अभारी हैं। निस्सन्देह आपकी स्नेह-शक्ति पाकर ही "श्रीकृष्ण-सन्देश" अपने जीवनके दो वर्ष पूरे करने, तीसरे वर्षमें मासिक रूपसे प्रविष्ट होने और बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं, विद्वानों तथा राष्ट्र-नेताओंका आशीर्वाद पानेमें समर्थ हो सका है।

"श्रीकृष्ण-सन्देश" का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्णके धर्मोपदेशों द्वारा व्यक्ति, समाज और राष्ट्रमें नैतिक बल, पवित्राचरण तथा स्वधर्म-निष्ठा तो बढ़ाना है ही, उनके इतिहास-प्रसिद्ध पावन जन्म-स्थानको भी उनकी महिमाके अनुरूप विकसित करके उसे ऐसा रूप देना है, जिससे कि वह देश-विदेशके जिज्ञासुओंका प्रेरणा-केन्द्र बन जाय। किन्तु इस महान् उद्देश्यकी सम्पूर्ति तभी होगी, जब समस्त श्रीकृष्णप्रेमी "श्रीकृष्ण-सन्देश" को अपना लेनेकी कृपा करेंगे।

अतः हम कृपालु ग्राहकोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि आप अपने इष्ट मित्रों और बन्धु-बान्धवोंको "श्रीकृष्ण-सन्देश" के ग्राहक बनानेका अनुग्रह करें। यदि प्रत्येक कृपालु ग्राहक दस-दस नये ग्राहक बना देनेका कष्ट उठावें तो "श्रीकृष्ण-सन्देश" की शक्ति दस गुनी बढ़ जायेगी।

आशा ही नहीं, विश्वास है कि आप सभी कृपालु ग्राहक हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देनेकी कृपा करेंगे।

प्रार्थी—
प्रबन्ध-सम्पादक
"श्रीकृष्ण-सन्देश"
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके लिए देवधरशर्मा द्वारा बम्बई भूषण प्रेस, मथुरामें मुद्रित तथा प्रकाशित : आवरण-मुद्रक—व्रजवासी फाइन आर्ट ओफसैट वर्क्स, मथुरा।